# अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका – जुलाई २०१९

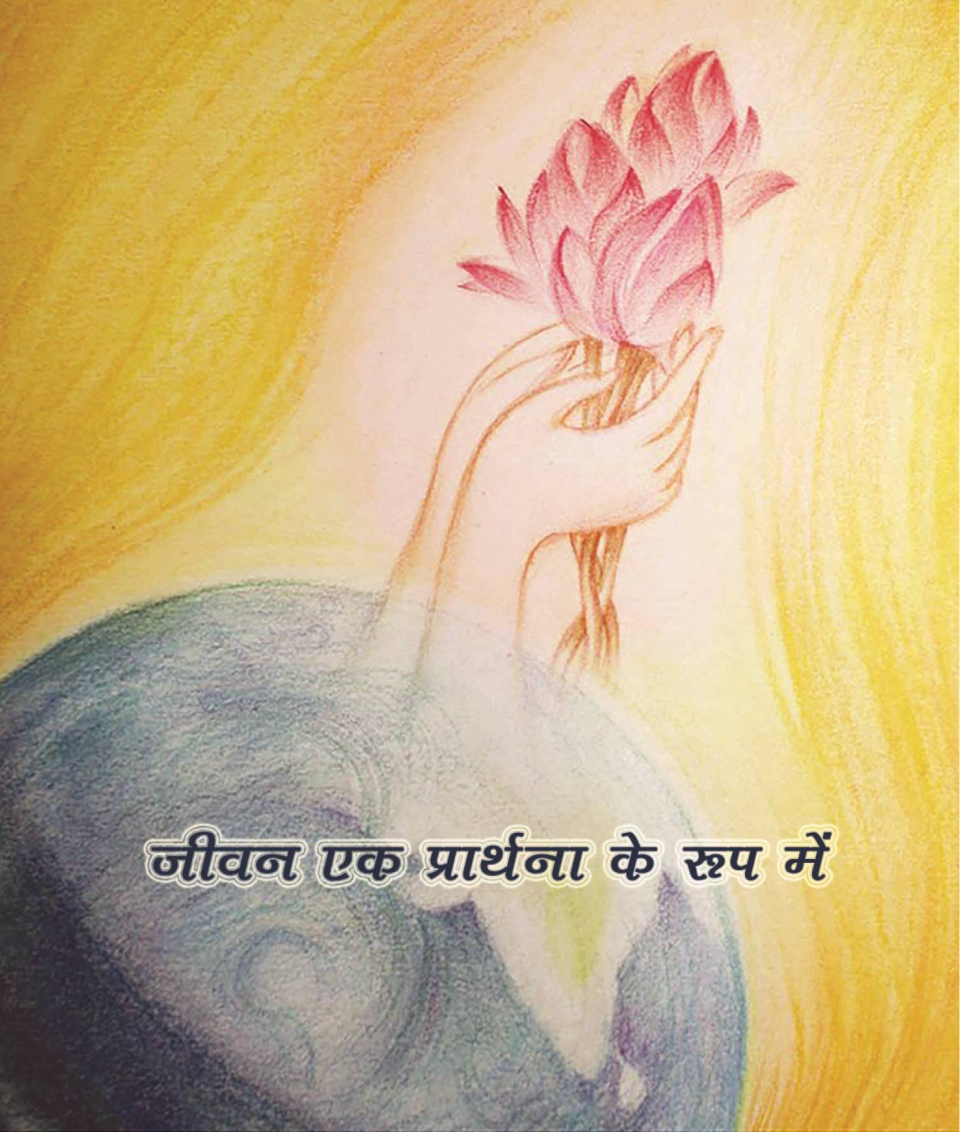

## जीवन एक प्रार्थना के रूप में

अग्निशिखा जुलाई २०१९ वर्ष ४९, अंक १२, पूर्णांक ५८७

# विषय-सूची

## जीवन एक प्रार्थना के रूप में
## (श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)


| | |
|---|---|
| प्रार्थना/सम्पादकीय | ३ |
| श्रीअरविन्द की एक प्रार्थना | ५ |
| अन्तरात्मा की प्रार्थनाएँ | ९ |
| प्रार्थना से भरा जीवन | १९ |
| नव चेतना : सन्देश तथा प्रार्थनाएँ | २८ |
| श्रीमाँ के कुछ मन्त्र और प्रार्थनाएँ | ३१ |
| भगवान् मनुष्य को रास्ता दिखलाते हैं | ३२ |
| साधना के रूप में प्रार्थना करना | ३७ |
| दीप्तियों की माता का स्तवन | ४३ |


## 'पुरोधा'


| | | |
|---|---|---|
| दैनन्दिनी | | ४६ |
| श्रद्धा | नवजात जी | ४९ |
| 'योग के तत्त्व' : समर्पण | श्रीअरविन्द | ५२ |
| झरने का पानी ('साहित्य-संहिता' से साभार) | रामप्रसाद गुप्त | ५६ |
| सच्ची इबादत | वन्दना | ५७ |


**मुखपृष्ठ**

**चित्रांकन—ऋतम् उपाध्याय**

***हमें हमेशा भगवान् के सम्मुख एक ऐसे कोरे काग़ज़ की तरह होना चाहिये जिस पर उनकी इच्छा बिना किसी कठिनाई या मिश्रण के अंकित हो सके।***

***२० नवम्बर १९५४ —श्रीमाँ***

# प्रार्थना

**३ मई १९१४**

हे दिव्य 'प्रेम', सर्वोच्च 'ज्ञान', पूर्ण 'एकत्व', दिन के हर क्षण मैं तुझे पुकारती हूँ ताकि केवल तेरे सिवाय और कुछ न होऊँ!

वर दे कि यह यन्त्र तेरी सेवा करे और इस बात से सचेतन रहे कि यह एक यन्त्र है और वर दे कि मेरी समस्त चेतना, तेरी चेतना में मिल कर सभी चीज़ों का तेरी दिव्य दृष्टि से ही अवलोकन करे।

हे प्रभो, प्रभो, वर दे कि तेरी परम शक्ति अभिव्यक्त हो; वर दे कि तेरा कार्य चरितार्थ हो और तेरा सेवक पूरी तरह से तेरी सेवा के लिए ही सर्मपित हो।

वर दे कि "अहं" हमेशा के लिए ग़ायब हो जाये, रह जाये केवल एक यन्त्र।

—श्रीमाँ

***सम्पादकीय :*** जून का अंक भी प्रार्थना-अंक था। उसी का दूसरा भाग इस बार प्रस्तुत है। इसमें हमने श्रीमाँ तथा श्रीअरविन्द की कुछ चुनी हुई प्रार्थनाएँ संकलित की हैं जो उन्होंने साधक-साधिकाओं को लिखी थीं या विशेष अवसरों पर दी थीं। साथ ही श्रीमाँ की कुछ ऐसी चुनी हुई प्रार्थनाओं का भी समावेश किया गया है जो पहले कभी-कदास ही छपी हैं, जिनमें भगवती माँ के विशाल तथा ज्योतिर्मय प्रेम की धड़कनें अनुभव की जा सकती हैं। ये हमें प्रेरित करती हैं, हमें ऊपर उठाती हैं और साथ ही वह पथ दिखलाती हैं जिन पर हम सबको चलना है।

गहराई में और भी अधिक गहराई है, ऊँचाइयों में और भी अधिक ऊँचाई है। मनुष्य अपनी सत्ता की पूर्णता तक पहुँचने से पहले अनन्त की सीमाओं तक जा पहुँचेगा, क्योंकि वह सत्ता अनन्त की है, भगवान् की है।

मैं अनन्त शक्ति, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द के लिए अभीप्सा करता हूँ। क्या मैं उसे पा सकता हूँ? हाँ, परन्तु अनन्त का स्वभाव यह है कि उसका कोई अन्त नहीं इसलिए यह न कहो कि मैं उसे पाता हूँ। मैं वह हो जाता हूँ। मनुष्य इसी तरह भगवान् बन कर ही भगवान् को पा सकता है।

लेकिन भगवान् को पाने से पहले मनुष्य उनके साथ नाता जोड़ सकता है। भगवान् के साथ नाता जोड़ना ही योग है, यही परम हर्ष और सबसे उदात्त उपयोगिता है। हमने मानवता का जो घेरा विकसित किया है उसमें भी नाते हैं। इन्हें प्रार्थना, पूजा, आराधना, यज्ञ, विचार, श्रद्धा, विज्ञान, दर्शन कहा जाता है। इसके अतिरिक्त और भी नाते हैं जो हमारी विकसित क्षमता के तो परे हैं पर हमें जिस मानवता को विकसित करना है उसके घेरे में हैं। ये ऐसे सम्बन्ध हैं जो, साधारणतः हम जिसे योग कहते हैं उसके अभ्यास से प्राप्त होते हैं।

हम उन्हें भगवान् के नाम से न जानें। हम उन्हें प्रकृति, अपना उच्चतर स्व, अनन्त, अनिर्वचनीय लक्ष्य कह सकते हैं। बुद्ध उनके पास इसी तरह गये थे। कट्टर अद्वैतवादी उनके पास इसी तरह जाता है। वे नास्तिक की भी पहुँच में हैं। जड़ भौतिकवादी के लिए वे जड़ द्रव्य का छद्मवेश धारण करते हैं। शून्यवादी के लिए वे निर्वाण के कक्ष में घात लगाये प्रतीक्षा करते रहते हैं।

**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**

CWSA खण्ड १२, पृ. ५ —श्रीअरविन्द

# श्रीअरविन्द की एक प्रार्थना

विस्तृत होओ मेरे अन्दर, हे वरुण;
शक्तिशाली बनो मेरे अन्दर, हे इन्द्र;
हे सूर्य, प्रदीप्त होओ और भास्वर बनो;
हे चन्द्र, शोभा-सुषमा और मधुरिमा से भर उठो।
उग्र और भयंकर बनो, हे रुद्र;
प्रचण्ड और वेगवान् बनो, हे मरुत्;
बलवान् और साहसी होओ, हे अर्यमा;
विलासी और सुखदायी बनो, हे भग;
कोमल, कृपालु, स्नेहिल और अनुरागी बनो, हे मित्र;
उज्ज्वल और उद्भासक होओ, हे उषा;
हे निशे, भव्य और उर्वर बनो;
हे जीवन, परिपूर्ण, प्रस्तुत और प्रफुल्ल होओ;
हे मृत्यु, एक सौध से दूसरे सौध तक मुझे ले चलो।
इन सबको एक लय-ताल में बाँध दो, हे ब्रह्मणस्पति।
मैं इन देवताओं का दास न बनूँ, हे काली।

तो, श्रीअरविन्द काली को बड़ी मुक्तिदायिनी शक्ति मानते हैं जो तुम्हें लगन के साथ प्रगति करने की ओर प्रवृत्त करती है और तुम्हारे अन्दर ऐसा कोई बन्धन नहीं छोड़ती जो तुम्हें प्रगति करने से रोके।

*–'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ४०९-१०*

## 'एकमेव' के विभिन्न रूपों की वन्दना

हे प्रभु, दयालुता एवं कृपा के ईश्वर, हे प्रभु, परम ऐक्य के ईश्वर, हे प्रभु, सौन्दर्य एवं सामञ्जस्य के ईश्वर, हे प्रभु, सामर्थ्य एवं सिद्धि के ईश्वर, हे प्रभु, प्रेम एवं करुणा के ईश्वर, हे प्रभु, मौन एवं चिन्तन के ईश्वर, हे प्रभु, प्रकाश एवं ज्ञान के ईश्वर, हे प्रभु, जीवन एवं अमरत्व के ईश्वर, हे प्रभु, यौवन एवं प्रगति के ईश्वर, हे प्रभु, आधिक्य एवं प्राचुर्य के ईश्वर, हे प्रभु, शक्ति एवं स्वास्थ्य के ईश्वर, हे प्रभु, शान्ति एवं विशालता के ईश्वर, हे प्रभु, बल एवं अजेयता के ईश्वर, हे प्रभु, विजयशील सत्य के ईश्वर।

इस शरीर को अपने अधिकार में ले लो,<br>
इसमें स्वयं को अभिव्यक्त करो।

ओम्, परम प्रभु,<br>
इन कोशिकाओं को अधिकार में ले लो<br>
इस मस्तिष्क को अधिकार में ले लो<br>
इन स्नायुओं को अधिकार में ले लो<br>
इस शरीर को अधिकार में ले लो<br>
इस पदार्थ को अधिकार में ले लो<br>
इन परमाणुओं को अधिकार में ले लो<br>
ओम्, परम प्रभु, अपनी गरिमा को अभिव्यक्त करो

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से* *अदिनांकित (जनवरी १९५९)*

तुम मेरा प्रकाश, बल और मेरा उल्लास हो, मेरी परम उपलब्धि हो।

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से* *९ अक्तूबर १९५९*

ओम् ओम्, परम प्रभु, दयालुता एवं कृपा के ईश्वर, ओम्, परम प्रभु, प्रेम एवं करुणा के ईश्वर, ओम्, परम प्रभु, इन कोशिकाओं को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इस मस्तिष्क को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इन स्नायुओं को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इस विचार को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इस वाणी को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इस कर्म को अधिकार में ले लो, ओम्, परम

प्रभु, इस शरीर को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इस हृदय को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इस पदार्थ को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इन परमाणुओं को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इस अवचेतन को अधिकार में ले लो, ओम्, परम प्रभु, इस अचेतन को अधिकार में ले लो।

*ओम् नमो भगवते*
ओम्, परम प्रभु, दयालुता एवं कृपा के ईश्वर
ओम्, परम प्रभु, प्रेम एवं उल्लास के ईश्वर
ओम्, परम प्रभु, अपने संकल्प को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने सत्य को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी पवित्रता को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी पूर्णता को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने ऐक्य को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी चिरन्तनता को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी अनन्तता को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने अमरत्व को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने मौन को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी शान्ति को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने अस्तित्व को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी चेतना को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी सर्वशक्तिमत्ता को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने उल्लास को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने ज्ञान को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने परम विज्ञान को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी प्रज्ञा को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी समानता को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी तीव्रता को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने प्रकाश को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने सामञ्जस्य को अभिव्यक्त करो

ओम्, परम प्रभु, अपनी करुणा को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने सौन्दर्य को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपने प्रेम को अभिव्यक्त करो
ओम्, परम प्रभु, अपनी विजय को अभिव्यक्त करो
तुम्हें गौरव मिले, हे परम विजयी प्रभु!

*

*महिमा तवैव प्रभो परम जित्वर ओम् तत् सत् ओम् सत् चित्तपस् आनन्द ओम् मनो भगवते ओम् मेरे मृदुल प्रभु ओम्, मेरे प्रियतम।*

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से, अदिनांकित*

## शुद्धि के लिए प्रार्थनाएँ

प्रभो! मुझे क्रोध, कृतघ्नता और मूर्खताभरे दर्प से मुक्त कर दे। मुझे शान्त, नम्र और कोमल बना। वर दे कि मैं अपने कार्य में और अपनी समस्त क्रिया में तेरे ही भागवत नियन्त्रण का अनुभव करूँ।

*

मैं प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपनी इच्छा और अपने ही आग्रह पर डटा न रहूँ, मुझे उससे मुक्त और शुद्ध कर दे ताकि मैं श्रीमाँ के प्रति विनम्र तथा आज्ञाकारी बन जाऊँ और उनके कार्य के लिए उपयुक्त यन्त्र बन सकूँ, जो कुछ भी करूँ, उनके प्रति सतत समर्पित रहूँ और उन्हीं की 'कृपा' के पथ-प्रदर्शन में चलता चलूँ।

*

वर दे कि आज और अभी से मैं अपने सभी दोषों और त्रुटियों को निकाल बाहर कर दूँ, वर दे कि यह मैं पूरी ऊर्जा और दृढ़ता के साथ तब तक करता रहूँ जब तक कि इसमें पूरी तरह से सफल न हो जाऊँ। वर दे कि मैं समस्त अक्खड़पन, झगड़ालू प्रवृत्ति, स्वाभिमान तथा दर्प, श्रीमाँ के प्रति अवज्ञा और विद्रोह, दूसरों के प्रति घृणा और विद्वेष, वाणी तथा आचरण में उग्रता, मिथ्यात्व, स्वाग्रह और माँग, असन्तोष तथा शिकायत से मुक्त हो जाऊँ। वर दे कि मैं सभी के साथ मित्रता बनाये रखूँ और किसी के भी प्रति दुर्भावना को न पोसूँ। वर दे कि मैं श्रीमाँ का सच्चा बालक बनूँ।

CWSA खण्ड ३५, पृ. ८४३ —श्रीअरविन्द

# अन्तरात्मा की प्रार्थनाएँ

मेरे प्रभो, मुझे पूरी तरह अपना बना ले।

*

मेरे प्रभो, मैं पूरी तरह और सच्चाई के साथ तेरी होऊँ।

*

हे प्रभो, मुझे पूर्ण सच्चाई प्रदान कर।
हे प्रभो, मैं हमेशा के लिए पूरी तरह तेरी ही होऊँ।

*

परम प्रभु को सम्बोधित अभीप्सा :
मेरे अन्दर सब कुछ सदा तेरी ही सेवा में रहे।

*

हे प्रभो, मेरे अन्दर तुझे जानने की उत्कट कामना जगा।
मैं अभीप्सा करती हूँ कि मेरा जीवन तेरी सेवा में समर्पित हो।

*

मैं सदा तेरे दिव्य पथ-प्रदर्शन का अनुसरण करूँ। वर दे कि मैं अपनी सच्ची नियति से अवगत रहूँ।

*

हे प्रभो, तेरी मधुरता मेरी अन्तरात्मा में प्रवेश कर गयी है और तूने मेरी सत्ता को आनन्द से भर दिया है।

*

मेरा हृदय शान्त है, मेरा मन अधीरता से मुक्त है और एक बालक के मुस्कुराते हुए विश्वास के साथ सभी चीज़ों में मैं तेरी इच्छा पर निर्भर रहती हूँ।

*

मेरे प्रभो, प्रतिदिन, सभी परिस्थितियों में मैं हृदय की पूरी सच्चाई के साथ जपूँ, "तेरी इच्छा पूरी हो, मेरी नहीं।"

*

प्रभो, अपनी पूरी अन्तरात्मा के साथ मैं वही करना चाहती हूँ जो करने का तू आदेश दे।

हे प्रभो, मुझे समस्त दर्प से मुक्त कर; मुझे विनीत और सच्चा बना।

*

हे प्रभो, बड़ी विनय के साथ मैं प्रार्थना करती हूँ कि मैं अपने प्रयास के शिखर पर रहूँ, कि मेरे अन्दर कोई भी चीज़ सचेतन या अचेतन रूप से, तेरे पवित्र उद्देश्य की सेवा करने में कोताही करके तेरे साथ विश्वासघात न करे।

गम्भीर भक्ति के साथ मैं तुझे प्रणाम करती हूँ।

*

प्रभो, मुझे सम्पूर्ण और समग्र सच्चाई का बल प्रदान कर ताकि मैं तेरी सिद्धि के योग्य बन सकूँ।

*

ओ मेरे हृदय, भागवत विजय के योग्य महान् बन।

*

मेरा हृदय तेरी 'विजय' के योग्य विशाल होने की अभीप्सा करता है।

*

मैं समस्त अहंकारमयी दुर्बलताओं और समस्त अचेतन कपट-कुटिलताओं से मुक्त किये जाने के लिए अभीप्सा करती हूँ।

*

प्रभो, वर दे कि चीज़ों के बारे में मेरी दृष्टि स्पष्ट और तटस्थ हो और मेरे कार्य उसके द्वारा पूर्णतया रूपान्तरित हों।

*

प्रभो, वर दे कि एक बार की गयी और पहचानी गयी मूर्खता कभी दुबारा न होने पाये।

*

मेरे प्रभो, तू मुझे अपने अन्दर वह शान्त भरोसा प्रदान कर जो समस्त कठिनाइयों पर विजय पा लेता है।

*

मुझे निश्चल विश्वास, शान्त बल, प्रगाढ़ श्रद्धा और भक्ति प्रदान कर।

*

प्रभो, वर दे कि मैं पूरी तरह, सदा के लिए तेरे प्रति निष्ठावान् रहूँ।

प्रभो, मेरे ऊपर यह कृपा कर कि मैं तुझे कभी न भूल पाऊँ।

*

मेरे प्रभो, चेतना को स्पष्ट और यथार्थ बना, वाणी को पूरी तरह सच्चा बना, समर्पण पूर्ण हो, स्थिरता सम्पूर्ण और सारी सत्ता को प्रकाश और प्रेम के सागर में रूपान्तरित कर दे।

*

मुझे पूर्णतया पारदर्शक बना ताकि मेरी चेतना तेरी चेतना के साथ एक हो सके।

मैं इस धरती की सारी समृद्धि को तेरे चरणों में चढ़ाने की अभीप्सा करती हूँ।

*

हे प्रभो, मैं तुझसे प्रार्थना करती हूँ, मेरे चरणों को रास्ता दिखा, मेरे मन को प्रबुद्ध कर ताकि सभी चीज़ों में हर क्षण मैं वही करूँ जो तू मुझसे करवाना चाहता है।

*

प्रभो, मुझे पूर्ण सच्चाई प्रदान कर, वह सच्चाई जो मुझे सीधा तेरे पास ले जाये।

*

प्रभो, मुझे अपना आशीर्वाद दे ताकि मैं अधिकाधिक सच्ची बन सकूँ।

*

प्रभो, मुझे वास्तविक सुख दे, वह सुख जो केवल तेरे ही ऊपर निर्भर करता है।

*

हे प्रभो, वर दे कि मैं वही बनूँ जो तू मुझे बनाना चाहता है।

*

मैं तेरी हूँ, मैं तुझे जानना चाहती हूँ ताकि जो कुछ मैं करूँ वह सब केवल वही हो जो तू मुझसे करवाना चाहता है।

*

दया के स्वामी, मुझे अपनी कृपा के योग्य बना।

*

मेरे प्रभो, तूने आज रात को मुझे यह परम ज्ञान दिया है।
हम ज़िन्दा हैं क्योंकि यही तेरी इच्छा है।
हम तभी मरेंगे जब यह तेरी इच्छा होगी।

*

अचल शान्ति का आनन्द लेने का एकमात्र उपाय है, सभी परिस्थितियों में सदा वही चाहना जो तू चाहता है।

*

प्रभो, मुझे सच्चा सुख प्रदान कर, वह सुख जो केवल तेरे ऊपर निर्भर रहने से आता है।

*

प्रभो, हमें वह अदम्य साहस दे जो तुझ पर पूर्ण विश्वास होने से आता है।

*

प्रभो, हमें बल दे कि हम पूर्ण रूप से उस आदर्श को जी सकें जिसकी हम घोषणा करते हैं।

*

हमें उज्ज्वल भविष्य में श्रद्धा और उसे चरितार्थ करने की क्षमता प्रदान कर।

*

प्रभो, वर दे कि हमारे अन्दर चेतना और शान्ति बढ़े, ताकि हम तेरे एकमेव दिव्य विधान के अधिकाधिक निष्ठावान् माध्यम बन सकें।

*

प्रभो, हमारे अन्दर कोई भी चीज़ तेरे काम में बाधा न दे।

*

प्रभो, हमें मिथ्यात्व से मुक्त कर, हम तेरे सत्य में तेरी विजय के योग्य और पवित्र बन कर उभरें।

*

हे अद्‍भुत कृपा, वर दे कि हमारी अभीप्सा हमेशा अधिकाधिक तीव्र, हमारी श्रद्धा हमेशा अधिकाधिक जीवन्त और हमारा विश्वास हमेशा अधिकाधिक निरपेक्ष हो। तू 'सर्व-विजयी' है!

परम प्रभो, हमें नीरव रहना सिखा ताकि नीरवता में हम तेरी शक्ति ग्रहण कर सकें और तेरी इच्छा को समझ सकें।

*

हमें सत्य की ओर जाने के अपने प्रयास में वास्तविक रूप से सच्चा होना सिखला।

*

प्रभो, परम सत्य,

हम तुझे जानने और तेरी सेवा करने के लिए अभीप्सा करते हैं।

हमारी सहायता कर कि हम तेरे योग्य बालक बन सकें।

और इसके लिए तू अपने सतत उपहारों के बारे में हमें अवगत करा ताकि कृतज्ञता हमारे हृदयों को भर सके, हमारे जीवन पर राज कर सके।

*

प्रभो, तेरा प्रेम इतना महान्, इतना उदात्त और इतना पवित्र है कि वह हमारी समझ के परे है। वह अमित और अनन्त है; हमें उसे घुटनों के बल झुक कर ग्रहण करना चाहिये। फिर भी तूने उसे इतना मधुर बना दिया है कि हममें से सबसे निर्बल भी, एक बच्चा भी तेरे पास आ सकता है।

*

स्थिर, शान्त और विमल भक्ति के साथ हम तुझे नमस्कार करते हैं और तुझे अपनी सत्ता की एकमात्र वास्तविकता के रूप में स्वीकार करते हैं।

*

प्रभो, सुन्दरता और सामञ्जस्य के देव,

वर दे कि हम संसार में तेरी परम सुन्दरता को अभिव्यक्त करने-योग्य यन्त्र बन सकें।

यही हमारी प्रार्थना और हमारी अभीप्सा है।

*

हे परम सद्वस्तु, वर दे कि हम सम्पूर्ण रूप से वह अद्‌भुत रहस्य जी सकें जिसे अब हमारे सम्मुख प्रकट कर दिया गया है।

*

मधुर माँ, वर दे कि हम सरल रूप से, अब और हमेशा के लिए, तेरे नन्हें बालक बने रहें।

हे मेरे मधुर स्वामी, तू ही विजेता है और तू ही विजय, तू ही जय है और तू ही जयी!

*

तेरा हृदय मेरे लिये परम आश्रय है जहाँ हर चिन्ता शान्त हो जाती है। कृपा कर कि यह हृदय पूरा खुला रहे ताकि वे सब जो यातना से पीड़ित हैं, उसमें परम शरण पा सकें।

*

समस्त हिंसा को शान्त कर दे, तेरा प्रेम ही राज्य करे।

*

हे प्रभो, तेरी इच्छा पूर्ण हो। तू ही सर्वश्रेष्ठ और पूर्ण सुरक्षा है।

*

हे मेरे प्रभो, तेरी सहायता और कृपा हो तो फिर डर किस बात का!
तू ही परम सुरक्षा है जो सभी शत्रुओं को हरा देती है।

*

सभी परिस्थितियों में तेरी विजय को देखना निश्चय ही उसके आने में सहायता करने का सबसे अच्छा उपाय है।

*

('एकमेव परम प्रभु' के प्रति)

तुझसे दूर होने के अतिरिक्त कोई और पाप नहीं, कोई और दोष नहीं।

*

प्रभो, तेरे बिना जीवन भयंकर है। तेरे प्रकाश, तेरी चेतना, तेरे सौन्दर्य और तेरी शक्ति के बिना समस्त अस्तित्व एक मनहूस और वाहियात प्रहसन है।

*

हे प्रभो, जो कुछ है और जो कुछ होगा उसकी गहराइयों में तेरी दिव्य, अपरिवर्तनशील मुस्कान है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २३४-४५

---

*"हे प्रभो, मेरी सारी सत्ता को जगा दे ताकि वह तेरे लिए आवश्यक यन्त्र, तेरा सच्चा सेवक बन सके।"* —*श्रीमाँ*

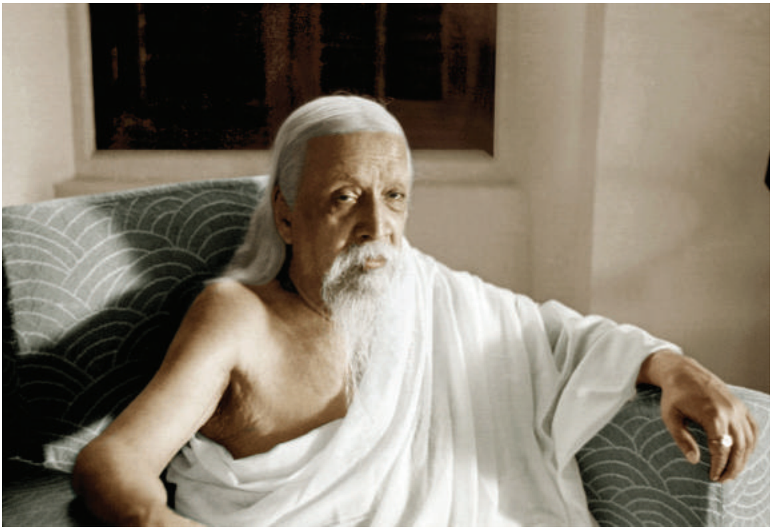

*उन दिनों जब मैं भगवान् की ओर बढ़ा तो मुझे उन पर जीवन्त श्रद्धा न के बराबर थी। उस समय मेरे अन्दर अज्ञेयवादी था, नास्तिक था, सन्देहवादी था और मुझे पूरी तरह विश्वास न था कि भगवान् हैं भी। मैं उनकी उपस्थिति का अनुभव नहीं करता था। फिर भी कोई चीज़ थी जिसने मुझे वेद के सत्य की ओर, गीता के सत्य की ओर, हिन्दू धर्म के सत्य की ओर आकर्षित किया। मुझे लगा कि इस योग में कहीं पर कोई महा शक्तिशाली सत्य अवश्य है, वेदान्त पर आधारित इस धर्म में कोई परम बलशाली सत्य अवश्य है। इसलिए जब मैं योग की ओर मुड़ा और योगाभ्यास करके मैंने यह जानने का संकल्प किया कि मेरी बात सच्ची है या नहीं तो मैंने उसे इस भाव और इस प्रार्थना से शुरू किया। मैंने कहा, "हे प्रभो, यदि तुम हो तो तुम मेरे हृदय की बात जानते हो। तुम जानते हो कि मैं मुक्ति नहीं माँगता, मैं ऐसी कोई चीज़ नहीं माँगता जो दूसरे माँगा करते हैं। मैं केवल इस जाति को ऊपर उठाने की शक्ति माँगता हूँ, मैं केवल यह माँगता हूँ कि मुझे इस देश के लोगों के लिए, जिनसे मैं प्यार करता हूँ, जीने और कर्म करने की आज्ञा मिले और यह प्रार्थना करता हूँ कि मैं अपना जीवन उनके लिए लगा सकूँ।"*

*CWSA खण्ड ८, पृ. ९-१०* —*श्रीअरविन्द*

## विद्यार्थियों की प्रार्थना[1]

हमें वह वीर योद्धा बना जो बनने के लिए हम अभीप्सा करते हैं। वर दे कि हम डटे रहने का प्रयास करने वाले भूत के विरुद्ध, सफलतापूर्वक उस भविष्य का युद्ध लड़ सकें जो अभी जन्म लेने को है, ताकि नयी चीज़ें अभिव्यक्त हो सकें और हम उन्हें ग्रहण करने-योग्य बन सकें।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १२२

प्रभो, हम तुझसे प्रार्थना करते हैं :
हम ज़्यादा अच्छी तरह समझ सकें कि हम यहाँ क्यों हैं,
हमें यहाँ जो करना है उसे ज़्यादा अच्छी तरह कर सकें,
हमें यहाँ जो बनना चाहिये वह बन सकें,
ताकि तेरी इच्छा सामञ्जस्य के साथ पूरी हो सके।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १३७

मधुर माँ, वर दे कि
इस क्षण और सदा ही
हम तेरे सरल बालक बने रहें,
और हमेशा तुझसे अधिक-से-अधिक प्रेम करते रहें।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १३८

## 'दॉर्त्वार छात्रावास' के विद्यार्थियों के लिए सन्देश

हम सब अपनी दिव्य जननी के सच्चे बालक बनना चाहते हैं।

लेकिन मधुर माँ, उसके लिए हमें धीरज और साहस, आज्ञाकारिता, सद्भावना, उदारता और निःस्वार्थता तथा अन्य सभी आवश्यक गुण प्रदान कर।

यही हमारी प्रार्थना और अभीप्सा है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १३९

[1] 'श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र' के उद्घाटन के समय यह प्रार्थना दी गयी थी।

## राधा का नृत्य

कल मैंने तुमसे राधा के नृत्य के बारे में जो कहा था उसे पूरा करने के लिए मैंने निम्नलिखित टिप्पणी लिखी है जो इस बात का संकेत है कि अन्त में जब राधा, कृष्ण के सामने खड़ी हो तो उसके अन्दर क्या विचार और भाव होने चाहियें :

"मेरे मन का प्रत्येक विचार, मेरे हृदय का हर एक भाव, मेरी सत्ता की हर एक गति, हर एक भावना और हर एक संवेदन, मेरे शरीर का हर एक कोषाणु, मेरे रक्त की हर एक बूँद, सब, सब कुछ तुम्हारा है, पूरी तरह तुम्हारा है, बिना कुछ बचाये तुम्हारा है। तुम मेरे जीवन का निश्चय कर सकते हो या मेरे मरण का, मेरे सुख का या मेरे दुःख का, मेरी ख़ुशी का या मेरे कष्ट का; तुम मेरे साथ जो भी करो, मेरे लिए तुम्हारे पास से जो भी आये वह मुझे भागवत 'आनन्द' की ओर ले जायेगा।"

## राधा की प्रार्थना

प्रथम दृष्टि में ही जिसको पहचान गया अभ्यन्तर,
अपना स्वामी, जीवन का सर्वस्व, हृदय का ईश्वर;
हे मेरे प्रभु, तू मेरी श्रद्धाञ्जलि स्वीकृत कर!—
तेरे ही हैं मेरे निखिल विचार, भावना, चिन्तन!
मेरे उर-आवेग, हृदय-संकल्प, सकल संवेदन;
तेरे ही हैं मेरे जीवन के व्यापार प्रतिक्षण,
मेरे तन का एक-एक अणु, शोणित का प्रति कण-कण!
सर्व भाँति, सम्पूर्ण रूप से तेरी हूँ मैं निश्चय
प्रिय, सर्वथा, अशेष रूप से तेरी ही निःसंशय;
तेरी इच्छा से परिचालित होगा मेरा जीवन,
केवल तेरी ही विधि का मैं, नाथ, करूँगी पालन!
जीवन-मरण कि हर्ष-शोक भेजे तू या सुख-दुःख के क्षण,
तेरे वरदानों का नित्य करेगा उर अभिवादन;
दिव्य देन होगी तेरी प्रत्येक देन मेरे हित,
वह सदैव, प्रभु, परम 'हर्ष' की वाहक होगी निश्चित!

*–'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २३२-३४*

जब तुम माँ दुर्गा का आवाहन करते हो, तुम उनके द्वारा मेरा आवाहन करते हो, जब तुम शिवजी का आह्वान करते हो, उनके द्वारा तुम मेरा आह्वान करते हो—और अन्तिम विश्लेषण में, सभी प्रार्थनाएँ 'परम प्रभु' की ओर जाती हैं।

'एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप' से, १५ दिसम्बर १९५८

# प्रार्थना से भरा जीवन

**एक दैनिक प्रार्थना**

हे प्रभो, मुझे भय और चिन्ता से मुक्त कर, ताकि मैं अपनी अधिक-से-अधिक योग्यता के साथ तेरी सेवा कर सकूँ।

**सवेरे और शाम की प्रार्थना**

प्रभो, मैं तुम्हारा और तुम्हारे योग्य बनना चाहता हूँ, मुझे अपना आदर्श बालक बना।

**सवेरे**

हे मेरे प्रभो, मेरी मधुर माँ,

वर दो कि मैं तुम्हारा बनूँ, पूरी तरह तुम्हारा, पूर्ण रूप से तुम्हारा।

तुम्हारी शक्ति, तुम्हारा प्रकाश और तुम्हारा प्रेम समस्त अशुभ से मेरी रक्षा करेंगे।

**दोपहर**

हे मेरे प्रभो, मधुर माँ,

मैं तुम्हारा हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि अधिकाधिक पूर्णता के साथ तुम्हारा बनूँ।

**रात**

हे मेरे प्रभो, मधुर माँ,

तुम्हारी शक्ति मेरे साथ है, तुम्हारा प्रकाश और तुम्हारा प्रेम और स्वयं तुम सभी कठिनाइयों से मेरी रक्षा करोगे।

**वर्षा के लिए प्रार्थना**

वर्षा, वर्षा, वर्षा, हम वर्षा चाहते हैं।<br>
वर्षा, वर्षा, वर्षा, हम वर्षा माँगते हैं।<br>
वर्षा, वर्षा, वर्षा, हमें वर्षा की ज़रूरत है।<br>
वर्षा, वर्षा, वर्षा, हम वर्षा के लिए प्रार्थना करते हैं।

**सूर्य से प्रार्थना**

हे सूर्य! हमारे मित्र,
बादलों को छिन्न-भिन्न कर दो,
वर्षा को सोख लो।
हम तुम्हारी किरणें चाहते हैं,
हम तुम्हारा प्रकाश चाहते हैं, हे सूर्य, हमारे मित्र।

**विरोधी शक्तियों को खदेड़ने के लिए प्रार्थना**

मेरे प्रभु के नाम से,
मेरे प्रभु के लिए,
मेरे प्रभु की इच्छा से,
मेरे प्रभु की शक्ति से,
हमें तंग करना एकदम बन्द कर दो।

**भक्ति की प्रार्थनाएँ**

मेरे मधुर प्रभो, मेरी छोटी-सी माँ,
मुझे सच्चा प्रेम प्रदान करो, ऐसा प्रेम जो अपने-आपको भूल जाता है।

*

मेरे प्रभो, मेरी माँ,

तुम हमेशा अपने आशीर्वाद और अपनी कृपा के साथ मेरे संग-संग रहते हो। तुम्हारी उपस्थिति ही परम सुरक्षा है।

*

मेरी एक छोटी-सी माँ है
जो मेरे हृदय में आसीन है;
हम दोनों एक साथ इतने प्रसन्न हैं,
कि हम कभी अलग न होंगे।

–*'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २३६-४५*

*हमारा हर रोज़ और हर समय का प्रयास यही हो कि हम 'तुझे' ज़्यादा अच्छी तरह जान सकें और 'तेरी' सेवा ज़्यादा अच्छी तरह कर सकें।*

*—श्रीमाँ*

## एक साधिका को दी गयी प्रार्थनाएँ

देदीप्यमान सूर्य में 'तू' प्रदीप्त है। बढ़ते हुए मन्द-सुगन्धित समीर में 'तू' अपने-आपको अनुभव कराता है। सभी हृदयों में 'तू' ही अभिव्यक्त होता है और सभी सत्ताओं में तेरा ही निवास है।

*

प्रभो! वर दे कि मैं पूरी तरह से और शाश्वत काल तक 'तेरे' प्रति निष्ठावान् रहूँ।

हे प्रभो! अद्‌भुत 'सखा', सर्वशक्तिशाली 'स्वामी', हमारी सम्पूर्ण सत्ता में व्याप्त हो जा और उसे रूपान्तरित कर दे ताकि हमारे अन्दर और हमारे द्वारा केवल 'तू' ही जिये!

*श्रीमाँ: Champaklal treasures, पृ. ४६*

## जन्मदिन के लिए प्रार्थना

रत्ती-भर अभ्यास सिद्धान्तों के पहाड़ों के बराबर है।

"प्रभो, मेरे जन्म की वर्षगाँठ पर वर दे कि मेरे अन्दर जानने की शक्ति मुझे पूर्णतया रूपान्तरित करने की शक्ति में बदल जाये।"

*

याद रखो कि माँ हमेशा तुम्हारे साथ हैं।

उन्हें इस तरह सम्बोधित करो और वे तुम्हें सब कठिनाइयों में से बाहर निकाल लेंगी: "हे माँ, तू मेरी बुद्धि का प्रकाश, मेरी अन्तरात्मा की शुद्धि, मेरे प्राण का स्थिर-शान्त बल और मेरे शरीर की सहनशक्ति है। मैं केवल तेरे ही ऊपर निर्भर रहता हूँ और पूरी तरह तेरा ही होना चाहता हूँ। मार्ग की सभी कठिनाइयों से मुझे पार करा दे।"

*–'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २२१ ,२४०*

प्रार्थना तथा अभीप्सा के लिए कोई बना-बनाया या विशेष तरीक़ा नहीं होता, इसमें सतही ज्ञान काम नहीं करता। यह सहज रूप से अन्दर से आता है और बाहरी सत्ता पर हावी हो जाता है: तब स्वाभाविक रूप से सब कुछ आसान और अद्‌भुत हो जाता है।

Mother You Said So, ५ जुलाई १९५७

## सिर्फ़ प्रेम ही बचा सकता है

बहिर्मुख मत होओ। हमेशा अपने अन्दर झाँको और वहाँ तुम्हें 'प्रेम', 'शान्ति', 'प्रकाश' तथा 'बल' मिलेंगे।

यहाँ तक कि 'सत्य' भी 'प्रेम' के बिना अभिव्यक्त नहीं हो सकता। केवल 'प्रेम' के द्वारा ही 'सत्य' अभिव्यक्त होता है। 'प्रेम' है वह अग्नि जो हृदय की गहराइयों में धधकती है। केवल 'प्रेम' ही उद्धार कर सकता है। और जगत् केवल 'प्रेम' के प्रति ही उद्घाटित होगा।

मैं हमेशा प्रभु से प्रार्थना करती हूँ, "हे परम प्रभो, 'अपने प्रेम' को अभिव्यक्त करो..."

'कृपा' हमेशा रहती है। अगर तुम अन्दर जाओ और वहाँ 'प्रेम' को प्राप्त कर लो, तब वहाँ कोई 'मैं', कोई 'तुम', कोई 'प्रभु', 'कोई' भी न होगा, बस होगा 'प्रेम' और वही 'प्रेम' बल तथा धैर्य प्रदान करता है।

'प्रेम' शाश्वत है और तुम्हें कभी असफल नहीं करता। बाहरी जगत् अस्त-व्यस्तताओं से भरा हुआ है। अपने अन्दर निवास करते चलो, जहाँ **प्रेम** बसता है।...

*Mother You Said So, २९ अप्रैल १९६४*

## शरीर के कोषाणुओं की प्रार्थना

अब जब कि हम 'कृपा' के प्रभाव से धीरे-धीरे निश्चेतना में से बाहर निकल रहे हैं और सचेतन जीवन के प्रति सजग हो रहे हैं तो हमारे अन्दर से अधिक प्रकाश और अधिक चेतना के लिए एक उत्कट प्रार्थना उठ रही है :

"हे सृष्टि के परम प्रभु, हम अनुनय करते हैं, हमें वह बल और सुन्दरता, सामञ्जस्यपूर्ण पूर्णता प्रदान कर जो धरती पर तेरे दिव्य यन्त्र बनने के लिए ज़रूरी हैं।"

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ३०४

## शरीर के लिए प्रार्थना

तो शरीर की, देह की एक ही प्रार्थना है—<br>
और हमेशा वही एक :<br>
मुझे इस योग्य बना कि मैं 'तुझे' जान सकूँ।<br>
मुझे 'अपनी' सेवा के योग्य बना।<br>
मुझे 'तू' बनने के योग्य बना।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. ३५०

## भोजन के लिए प्रार्थना

हे मेरे मधुर स्वामी, परम 'सत्य'!<br>
मैं अभीप्सा करती हूँ कि<br>
मैं जो भोजन लेती हूँ<br>
वह मेरे शरीर के समस्त कोषाणुओं में<br>
तेरा सर्व-ज्ञान, तेरी सर्व-शक्ति और तेरा सर्व-कल्याण भर दे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. ५५

## शान्ति से सोओ

तुम्हें आराम और शान्ति से सोना चाहिये और अपने मन को पूरी तरह से कोरा काग़ज़ बनाने की कोशिश करनी चाहिये। और जब तुम्हें थकान लगे तो आधे घण्टे के लिए चुपचाप बैठ जाओ, किसी भी चीज़ के बारे में मत सोचो और 'प्रभु' को पुकारो। अच्छी तरह आराम करो — केवल आराम और शान्ति में ही तुम अच्छी तरह से काम कर सकते हो। जब तुम अस्थिर होते हो तब स्वाभाविक रूप से तुम्हारी चेतना में प्रवेश करने से पहले ही प्रेरणा ग़ायब हो जाती है। इसलिए, तुम जो कुछ करो, आराम और शान्ति में उचित रूप से करो—इस तरह अभ्यास करते-करते तुम थकान का अनुभव नहीं करोगे।

थके होने पर काम में जुटे नहीं रहो। तुम्हें आराम-कुरसी पर बैठ कर अपने-आपको ढीला छोड़ देना चाहिये और प्रभु की टेर लगानी चाहिये, उनसे प्रार्थना करनी चाहिये, "हे प्रभो! आओ, मेरे मस्तिष्क को शान्ति प्रदान करो, मेरे हृदय को शान्त बनाओ, मेरे सारे शरीर में शान्ति का सञ्चार कर दो..." और तुम देखोगे कि न केवल तुम शान्ति का अनुभव करोगे बल्कि एकदम नीरोग भी हो जाओगे।

*Mother You Said So, १० मार्च १९६६*

## अपनी कठिनाइयों के समर्पण के लिए प्रार्थना

हमेशा चुपचाप, शान्त रहो और सब कुछ केवल परम प्रभु पर छोड़ दो क्योंकि वे हमसे कहीं ज़्यादा जानते हैं। हम मनुष्यों के लिए वे हमेशा अच्छे से अच्छा करते हैं। वे जानते हैं कि उसे कैसे किया जाता है। हमें बस उन्हें उनकी 'इच्छा' के अनुसार कार्य करते रहने देना चाहिये। और सरलतापूर्वक यही प्रार्थना करनी चाहिये, "हे ईश्वर, तुम ही करो, करते रहो, करते रहो..."

तुम भले अपने-आप करने का प्रयास करो, लेकिन कोई फ़ायदा न होगा। हमें सब कुछ भगवान् पर, *उनके अपने तरीक़े से* करने पर, छोड़ देना चाहिये।

भगवान् चमत्कारों पर विश्वास नहीं करते, न ही चमत्कार उन्हें पसन्द हैं। क्योंकि चमत्कार क्षणिक होते हैं। भगवान् का कार्य चिरस्थायी होता

है। लेकिन निस्सन्देह, उसमें समय लगता है; बस, हमें धीरज धरना चाहिये और अपनी पूरी क्षमता के साथ शान्त और निश्चल बने रहना चाहिये।

संसार बदल कर रहेगा।

*Mother You Said So, २१ मई १९६४*

मनुष्य का जीवन जटिल होता है। धरती पर अन्तरात्मा अपने-आपको शुद्ध करने के लिए जन्म लेती है। वह बहुत-सी चीज़ों से घिरी रहती है: आदतों, प्रकृति तथा अन्य चीज़ों से... सारी सत्ता दोषों से भरी और इखरी-बिखरी रहती है। वास्तव में, अच्छी और बुरी चीज़ें माता-पिता से आती हैं। लोगों को कभी अपने दोष पीछे सरका कर उन्हें छिपाना नहीं चाहिये। ऐसी सभी आदतों और दोषों को—जब-जब वे उठें—एकदम जड़ से पकड़ कर, सब कुछ भगवान् को निवेदित कर देना चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये, "हे ईश्वर! हमारे सभी दोषों और त्रुटियों को ले लो। हमें उनकी आवश्यकता नहीं—सब कुछ तुम्हारा ही है..." सारी सत्ता को सचेतन रूप से व्यवस्थित करना ही अन्तरात्मा का उद्देश्य होता है ताकि वह सत्ता को शुद्ध कर दे और अन्त में स्वयं को तथा मानव सत्ता को भगवान् के साथ जोड़ दे। यही है—सम्पूर्ण सत्ता का रूपान्तर।

*Mother You Said So, ९ जुलाई १९६४*

## सहायता के लिए प्रार्थना और कृतज्ञता

*मैं हमेशा सोचता रहा हूँ माँ कि मैं कैसे आपके प्रति अपना आभार प्रकट करूँ, अपनी कृतज्ञता निवेदित करूँ?*

मेरे प्रति!... आह! यह तो बड़ी मेहरबानी होगी जिसे पाने की मैं अधिकारिणी नहीं। क्योंकि कोई भी ऐसा करने का कष्ट नहीं उठाता। जब कोई कठिनाई, बाधा या हमला होता है तो तुरन्त लोग प्रार्थना लिख भेजते हैं, सहायता के लिए गुहार लगाते हैं, "कृपया पाहि माम्, त्राहि माम्।" यहाँ तक कि कठिनाइयों से उबारने के लिए कहते हैं: "माताजी, कृपया हमारी मदद कीजिये, आपके वरद हस्त हमारे सिर पर हों। अपनी कृपा बरसाइये। हम पर तरस खाइये।" और जब 'कृपा' अपना काम कर देती है, क्योंकि

वह तो है ही करुणामयी 'शक्ति'... तब उन हज़ारों कामों के लिए, जो मैं उनके लिए निरन्तर कर रही हूँ, कृतज्ञता का एक शब्द तक नहीं। जब मैं उन्हें बचा लेती हूँ, कठिनाइयों से उबार लेती हूँ, तब उसके बाद एक शब्द भी नहीं...। जब 'कृपा' ने उनके लिए सब कुछ कर दिया—उन्हें बचा लिया, उनकी रक्षा की और सारी कठिनाइयों को विजित कर लिया—तो नीचे से कृतज्ञता का एक शब्द भी ऊपर नहीं उठता। वे तुरत भूल जाते हैं सब कुछ। इस तरफ़ उनका ध्यान ही नहीं जाता कि किसी महान् शक्ति ने उन्हें ख़तरे से बाहर निकाला, जिसके बिना न वे बच सकते थे और न सुरक्षा और सुख-चैन के साथ रह सकते थे! फू! सब कुछ आया-गया हो गया, कोई छाप भी नहीं रही उन पर; जिस महान् प्रत्यक्ष चमत्कार ने उन्हें बचाया उसकी उन्हें याद तक नहीं...। कृतज्ञता तो सचमुच पूरी तरह उपेक्षित रही; दुनिया में यह ढूँढ़े भी नहीं मिलती। कम-से-कम यह विरल तो है ही...। ओह, कृतज्ञ होना! यही तो फ़र्क है।

*–'परम' पुस्तक से पृ. ७५-७६*

मेरी प्यारी बच्ची को उसके जन्मदिन के उपलक्ष्य में मेरा प्रेम और मेरे आशीर्वाद। अपनी चैत्य सत्ता को अधिकाधिक सामने आने दो और वह तुम्हें भगवान् के साथ सच्ची घनिष्ठता प्रदान करे।

*श्रीमाँ : Champaklal treasures, पृ. ४६*

भगवान् के प्रति भक्ति, उनके कार्य के प्रति निष्ठा और उनकी इच्छा के प्रति आज्ञापालन—ये ही योग के पहले आधार हैं। इन खम्बों पर बाक़ी सब कुछ टिक सकता है।

*श्रीअरविन्द : Champaklal treasures, पृ. ४६*

निष्ठा, भक्ति, आत्मदान, निस्सवार्थ कार्य और सेवा, अविरत अभीप्सा ही सबसे सरल और सबसे प्रभावशील साधन हैं जिनके द्वारा अन्तरात्मा को तैयार किया जा सकता और यह अनुभव कराया जा सकता है कि वह भगवान् की चिरस्थायी उपस्थिति में निवास करती है।

*श्रीअरविन्द : Champaklal treasures, पृ. ४६*

## भगवान् का नाम जपना

सभी विरोधी शक्तियों और उनके सुझावों से पल्ला छुड़ाने का सर्वोत्तम उपाय है—खाते समय, सोते समय, तुम जो कुछ भी करो सारे समय, निरन्तर भगवान् का नाम जपते रहना: "मैं भगवान् को चाहता हूँ, उनके सिवाय और कुछ नहीं चाहता।" जब तुम बीमार पड़ो या कुछ अशुभ घट जाये तो तुम्हें भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये कि वे तुम्हारे रास्ते की उन सभी कठिनाइयों को हटा दें जो तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचने से रोक रही हैं। अगर पुकार सच्ची हो तो तुरन्त सभी बाधाएँ छूमन्तर हो जायेंगी। अगर तुम निरन्तर प्रार्थना करने की आदत बना लो तो प्रार्थनाएँ सच्ची बन जाती हैं क्योंकि सभी के हृदय की गहराइयों में प्रभु निवास करते हैं और वे सभी सच्ची प्रार्थनाओं को सुनते और सब कुछ देखते हैं। लेकिन अगर तुम शैतान की तरफ़ बढ़ चलो तो प्रभु चुपचाप रहते हैं और कुछ नहीं करते हैं। बहरहाल, वे हर पल, हर चीज़ पर नज़र रखते हैं। इसलिए तुम्हें कभी भी शैतान की ओर का रास्ता नहीं पकड़ना चाहिये, और इसीलिए सलाह यही दी जाती है कि सतत प्रार्थना और उनकी सतत स्मृति में डूबे रहो।

जब सारी सत्ता 'भागवत प्रकाश' और उनके प्रभाव की ओर मुड़ जाती है और बिना कुछ बचाये, सब कुछ उन्हीं पर छोड़ देती है—इसे ही कहते हैं सच्चा समर्पण और निष्कपटता।

तुम्हें तीव्रता के साथ प्रभु से प्रार्थना करनी चाहिये: "हे प्रभो! कृपया, मेरे पैरों में, मेरे हाथों में—मेरी सारी चेतना में कार्य करो; अगर मैं चलूँ, मेरे अन्दर तुम्हीं चलो, अगर मैं खाऊँ, मेरे अन्दर तुम्हीं भोजन करो—मैं जो कुछ करूँ, निरन्तर मेरे साथ रहो..." इस तरह तुम हमेशा 'प्रभु' तथा उनकी 'कृपा' की छतरी-तले रहोगे।

एकाग्र होने के लिए हृदय सबसे अच्छा स्थान है। अपने हृदय में गहरे उतरो, और प्रभु पर दत्तचित्त होते समय तुम्हें सोचना चाहिये: "प्रभु सारे ब्रह्माण्ड पर नियन्त्रण रखे हुए हैं, वे सर्वज्ञ, सर्वसमर्थ, सर्वव्यापी हैं, 'उन्हीं' को मेरा प्रेम समर्पित है..."

*Mother You Said So*, २ मार्च १९५६

# नव चेतना : सन्देश तथा प्रार्थनाएँ

यह सच है कि पहली जनवरी से (वर्ष १९६९) एक नया जगत्, या यह कहें कि एक नयी 'चेतना' धरती पर अभिव्यक्त हो गयी है।

*

"मुझे वह 'शक्ति' प्रदान कर कि मैं नव चेतना के प्रति स्वयं को पूर्ण रूप से उद्घाटित कर दूँ।"

*

"वर दे कि मैं 'नूतन चेतना' में जन्म लूँ।"

*

स्वयं को 'नूतन चेतना' के प्रति खोलो।

*

"मुझे सभी सम्भव मानव दुर्बलताओं से शुद्ध कर दे ताकि नूतन 'चेतना' को ग्रहण करने के लिए मैं आवश्यक निश्चल-नीरवता पा सकूँ।"

"मुझे उसके योग्य बना।"

*

इस समस्त आन्तरिक कार्य का परिणाम यह होना चाहिये कि कामनाएँ विलुप्त हो जायें; क्योंकि कामनाओं से रहित चेतना में ही 'नव चेतना' स्वयं को अभिव्यक्त कर सकती है।

*

नयी चेतना ने विकृत हुए बिना, स्वयं ही, अपनी अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक अवस्था जुटा ली है।

"बिना कोई परछाई डाले व्यक्ति को 'परम चेतना' के प्रकाश में खड़े रह सकना चाहिये।"

यह अहंकार के विलोपन का द्योतक है।

*

एक नूतन चेतना पृथ्वी पर उतरेगी।

वर दे कि 'तेरी' कृपा इस नूतन चेतना में मुझे सचेतन रूप से भाग लेने दे।

Blessings of the Grace पृ. १३९-४०

## भारत माता के प्रति आवाहन

जिस प्रकार व्यक्ति की अपनी अन्तरात्मा होती है जो उसकी वास्तविक सत्ता है और उसके भविष्य को थोड़े-बहुत प्रत्यक्ष रूप में परिचालित करती है, उसी प्रकार प्रत्येक राष्ट्र की भी अन्तरात्मा होती है, उसकी सच्ची सत्ता वही है और वही परदे के पीछे से उसकी भवितव्यता का निर्माण करती है : यही देश की आत्मा है, राष्ट्रीय प्रतिभा है, जाति की भावना है, राष्ट्रीय अभीप्सा का केन्द्र है, किसी देश के जीवन में जो कुछ सुन्दर, उत्कृष्ट, महान् और उदार होता है उसका मूल स्रोत है। सच्चे देश-भक्त प्रत्यक्ष सत्ता के रूप में इसकी उपस्थिति अनुभव करते हैं। इसी को भारतवर्ष में एक दिव्य सत्ता का-सा रूप दे दिया गया है; जो लोग अपने देश से सच्चा प्रेम करते हैं वे इसे भारत माता कह कर पुकारते हैं और अपने देश के हित के लिए इसी के सम्मुख अपनी दैनिक प्रार्थना करते हैं। यह भारत माता ही देश के सच्चे आदर्श को, विश्व में उसके सच्चे उद्देश्य को सांकेतिक रूप में व्यक्त करती है, उसे मूर्तिमान् करती है।

भारतवर्ष के कुछ विशिष्ट विचारक तथा अध्यात्मचेता श्रेष्ठ पुरुष तो इसे विश्वमाता की ही एक विभूति मानते हैं, जैसा कि 'दुर्गा-स्तोत्र' से प्रकट होता है। इसके कुछ पदों का अनुवाद नीचे दिया जा रहा है :

"माँ दुर्गे! सिंहवाहिनि, सर्वशक्तिदायिनि, तेरे... शक्ति-अंश से उत्पन्न हम भारत के युवकगण तेरे मन्दिर में आसीन हैं। माँ, हमारी प्रार्थना सुन, तू पृथ्वी पर अवतरित हो, अपने-आपको तू भारत की इस भूमि पर अभिव्यक्त कर।

"माँ दुर्गे! शक्तिदायिनि, प्रेमदायिनि, ज्ञानदायिनि, सौम्य-रौद्र-रूप-धारिणि माँ! तू अपने शक्ति-स्वरूप में भयंकर है। जीवन-संग्राम में, भारत-संग्राम में हम तेरे ही द्वारा प्रेरित योद्धा हैं; माँ, तू हमारे हृदय में, हमारे मन में असुर की शक्ति दे, हमारी आत्मा और हमारी बुद्धि को देवता का गुण, कर्म और ज्ञान दे।

"माँ दुर्गे! भारत, जगत् की सर्वश्रेष्ठ जाति, घोर तिमिर से आच्छन्न थी। माँ, तू पूर्वगगन में प्रकट हो रही है, तेरे दिव्य अंगों की आभा के साथ-साथ उषा का आगमन हो रहा है और यह अन्धकार को छिन्न-भिन्न कर रही है। अपने आलोक का विस्तार कर, माँ, अन्धकार का नाश कर।

"माँ दुर्गे! हम तेरी सन्तान हैं, तेरी कृपा से, तेरे प्रभाव से हम महत् कार्य के, महत् आदर्श के योग्य बनें। हमारी क्षुद्रता का, हमारे स्वार्थ का, हमारे भय का तू विनाश कर मां!

"माँ दुर्गे! तू काली है... हाथ में कृपाण धारण करके तू असुरों का विनाश करती है। देवि! अपने क्रूर निनाद से तू हमारे अन्तः-स्थित शत्रुओं का नाश कर। इनमें से एक भी हमारे अन्दर जीवित न रहे; हम शुद्ध और निर्मल हो जायें—यही हमारी प्रार्थना है; माँ, तू प्रकट हो।

"माँ दुर्गे! भारत स्वार्थ, भय और क्षुद्रता के हीन गर्त में गिरा हुआ है। हमें महान् बना, हमारे प्रयत्नों को महत् रूप दे, हमारे हृदय को विशाल बना, हमें अपने संकल्प के प्रति सच्चा रख। ऐसी कृपा कर कि हम और अधिक उस वस्तु की कामना न करें जो क्षुद्र, निःशक्त, आलस्यपूर्ण तथा भयग्रस्त हो।

"माँ दुर्गे! योगशक्ति का अत्यधिक विस्तार कर, हम तेरी आर्यसन्तान हैं; हमारे अन्दर लुप्त शिक्षा, चरित्र, मेधाशक्ति, श्रद्धा-भक्ति, तपोबल, ब्रह्मचर्यबल और सत्य ज्ञान का पुनः विकास कर—इन सबका जगत् में वितरण कर। हे विश्वजननि, मनुष्य की सहायता के लिए प्रकट हो, अशुभ का नाश कर।

"माँ दुर्गे! अन्तस्थ शत्रुओं का संहार कर, फिर चारों ओर की बाधाओं को निर्मूल कर दे। भद्र, वीर और पराक्रमी भारत-जाति, प्रेम और एकता में, सत्य और शक्ति में, शिल्प और साहित्य में, विक्रम और ज्ञान में श्रेष्ठ भारत-जाति अपने पवित्र काननों में, उर्वर खेतों में, गगनचुम्बी पर्वतों के तले, पूतसलिला नदियों के तीर पर निवास करे। तेरे चरणों में हमारी यही प्रार्थना है, माँ, तू प्रकट हो।

"माँ दुर्गे! अपने योग-बल द्वारा हमारे शरीर में प्रवेश कर। हम तेरे यन्त्र बनेंगे, तेरी अशुभनाशक तलवार बनेंगे, तेरा अज्ञानविनाशी प्रदीप होंगे। अपने शिशुओं की इस अभिलाषा को पूर्ण कर, माँ! तू स्वामिनी बन कर अपना यन्त्र चला, तलवार हाथ में लेकर अशुभ का नाश कर, प्रदीप ऊँचा उठा कर ज्ञान का प्रकाश विकीर्ण कर, तू प्रकट हो।"

*–'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. ४८-५०*

---

*निष्कपट तथा सच्ची प्रार्थनाओं की हमेशा सुनवाई होती है। —श्रीमाँ*

# श्रीमाँ के कुछ मन्त्र और प्रार्थनाएँ

ओम्

ओम्, परम प्रभु

इस शरीर को अपने अधिकार में ले लो

इसमें स्वयं को अभिव्यक्त करो।

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से,२१ जनवरी १९५९*

हे मेरे मधुर स्वामी, प्रभु, दयालुता एवं कृपा के ईश्वर।

जो भी तुम चाहते हो कि हम जानें, उसे हम जान लेंगे, जो भी तुम चाहते हो कि हम करें, उसे हम कर लेंगे, जो भी तुम चाहते हो कि हम हों, वह हम हो जायेंगे—सदा के लिए।

*ओम् - नमो - भगवते*

क्योंकि यह तुम हो जो है, जो जीवित है और जो जानता है—यह तुम्हीं हो जो सब कुछ करता है और जो सभी क्रियाओं का परिणाम है।

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से,२५ जुलाई १९५८*

और शरीर परम प्रभु से कहता है : 'तुम जो भी चाहते हो कि मैं होऊँ, मैं वह हो जाऊँगी, तुम जो भी चाहते हो कि मैं जानूँ, मैं उसे जान लूँगी, तुम जो भी चाहते हो कि मैं करूँ, मैं उसे करूँगी।'

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से, ३ अक्तूबर १९५८*

हे दिव्य प्रकाश, अतिमानसिक सत्य, इस आहार के साथ शरीर में पूर्णतः व्याप्त हो जाओ, सभी कोशिकाओं में प्रवेश करो, सभी परमाणुओं में बसो; सब कुछ पूर्णतः निश्छल तथा ग्रहणशील हो, तुम्हारी अभिव्यक्ति में जो कुछ बाधा उत्पन्न करता है उससे स्वतन्त्र हो जाये, संक्षेपतः, मेरे शरीर के उन सभी भागों को जो अभी तक तुम्हारे नहीं हैं, अपने प्रति उद्घाटित करो।

*एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से, अदिनांकित (१९५९)*

# भगवान् मनुष्य को रास्ता दिखलाते हैं

**माताजी की प्रार्थनाओं के विषय में**

*ऐसे बहुत-से लोग हैं जिनका मत है कि श्रीमाँ मनुष्य थीं पर अब उन्होंने भगवती माता को अपने अन्दर मूर्तिमान् किया है और उनका विश्वास है कि श्रीमाँ की प्रार्थनाएँ इस मत को पुष्ट करती हैं। पर, मेरी अन्तरात्मा का अनुभव यह है कि वे स्वयं भगवती माता ही हैं जिन्होंने अन्धकार, दुःख-कष्ट और अज्ञान का जामा पहनना इसलिए स्वीकार किया है कि वे सफलतापूर्वक हम मनुष्यों को 'ज्ञान', 'सुख' और 'आनन्द' की ओर, तथा परम प्रभु की ओर ले जा सकें।*

भगवान् स्वयं मार्ग पर चल कर मनुष्यों को राह दिखाने के लिए मनुष्य का रूप धारण करते हैं और बाहरी मानव-प्रकृति को स्वीकार करते हैं। पर इससे उनका 'भगवान्' होना ख़तम नहीं होता। यह एक अभिव्यक्ति होती है, बढ़ती हुई भागवत चेतना अपने-आपको प्रकट करती है। यह मनुष्य का भगवान् में बदल जाना नहीं है। श्रीमाँ अपने आन्तर स्वरूप में बचपन में भी मानवत्व से ऊपर थीं। इसलिए 'बहुत-से लोगों' का जो उपर्युक्त मत है वह भ्रमात्मक है।

*मेरी यह भी धारणा है कि श्रीमाँ की 'प्रार्थनाएँ' हम अभीप्सु चैत्य प्राणियों को यह दिखलाने के लिए लिखी गयी हैं कि भगवान् के सामने किस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये।*

हाँ। *CWSA खण्ड ३२, पृ. ३१-३२*

*"दिव्य प्रभु" को सम्बोधित माताजी की कुछ प्रार्थनाओं [१] में मैंने ये शब्द देखे हैं : "हमारी भगवती माता के साथ (Avec notre Divine Mère) ।" भला माताजी और दिव्य प्रभु (Divin Maitre) की भी*

१. माताजी की "प्रार्थनाएँ" जो मूलतः फ़्रेंच में लिखी गयी थीं, बाद में "Prières et Méditations" ("प्रीऐर्स ए मेदितासियों", "प्रार्थनाएँ और ध्यान") नाम से प्रकाशित हुईं। यहाँ हिन्दी के साथ-साथ कुछ फ़्रेंच शब्द भी कोष्ठक में दिये जा रहे हैं।

*एक 'भगवती माता' (Divine Mère) कैसे हो सकती हैं? यह तो ऐसा हुआ मानों माताजी 'भगवती माता' (Divine Mère) न हों और कोई दूसरी माताजी भी हों तथा 'दिव्य प्रभु' (Divin Maitre) परात्पर न हों और उनकी भी एक 'भगवती माता' (Divine Mère) हों! या क्या ये सब प्रार्थनाएँ किसी निर्वैयक्तिक सत्ता को सम्बोधित की गयी हैं?*

अधिकांश में ये प्रार्थनाएँ पार्थिव चेतना के साथ एक होकर लिखी गयी हैं। यहाँ निम्नतर प्रकृति में विद्यमान माँ उच्चतर प्रकृति में विद्यमान माँ को सम्बोधित कर रही हैं, रूपान्तर के लिए पार्थिव चेतना की साधना करती हुई स्वयं माताजी ही ऊपर विद्यमान स्वयं अपनी ही सत्ता से प्रार्थना कर रही हैं जिससे रूपान्तर की शक्तियाँ आती हैं। यह तब तक जारी रहता है जब तक कि पार्थिव चेतना और उच्चतर चेतना का तादात्म्य सिद्ध नहीं हो जाता। 'हमारी' *(notre)* शब्द, मेरी समझ में साधारण रूप में प्रयुक्त हुआ है और वह पार्थिव चेतना में उत्पन्न सभी प्राणियों को सूचित करता है—उसका अर्थ 'दिव्य प्रभु' *(Divin Maitre)* और स्वयं 'मेरी माताजी' नहीं है। वहाँ सर्वदा भगवान् को ही दिव्य प्रभु और स्वामिन् *(Divin Maitre et Seigneur)* के रूप में सम्बोधित किया गया है। एक माताजी हैं जो साधना कर रही हैं और दूसरी भगवती माता हैं, दोनों एक होने पर भी विभिन्न स्थितियाँ हैं, और दोनों सर्वेश्वर या दिव्य प्रभु (Seigneur or Divine Master) की ओर मुड़ती हैं। इस प्रकार की भगवान् की भगवान् से की हुई प्रार्थना तुम्हें रामायण और महाभारत में भी मिलेगी।

*माताजी की सन् १९१४ की कुछ ऐसी प्रार्थनाएँ हैं जिनमें वे रूपान्तर और अभिव्यक्ति की बात करती हैं। क्योंकि वे उस समय यहाँ नहीं थीं, तो क्या इससे यह मतलब नहीं निकलता कि यहाँ आने से बहुत पहले ही उनके अन्दर ये विचार थे?*

माताजी अपनी युवावस्था से, यहाँ तक कि बाल्यावस्था से लेकर हमेशा आध्यात्मिक रूप से सचेतन थीं और भारत आने से बहुत पहले ही वे साधना करके यह ज्ञान विकसित कर चुकी थीं।

*CWSA खण्ड ३२, पृ. ६०१-०२*

**भागवत उदाहरण**

*श्रीमाँ ने मुझसे तनावरहित और विकाररहित उचित मनोवृत्ति के बारे में कहा है, ऐसी मनोवृत्ति जो सूर्यालोक से भरपूर हो, जो पुष्प की भाँति प्रकाश की ओर खुलती हो। यह सब आप तथा श्रीमाँ जैसी सत्ताओं के लिए बहुत ठीक है, जो अवतार हैं, लेकिन हम बेचारे नश्वर मनुष्यों के पथ-प्रदर्शन के लिए आपका यह अस्पष्ट नुस्ख़ा किस काम का?*

*और फिर इस मनोवृत्ति को तो बस सतत प्रार्थना, श्रमसाध्य ध्यान तथा ग़लत गतियों को अस्वीकारने के निरन्तर प्रयास के अलावा और कैसे पाया जा सकता है भला?*

तुम कहते हो कि तुम्हारे लिए यह पथ बहुत कठिन है या तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल नहीं है, साथ ही तुम्हारा यह कहना भी है कि मेरे या माताजी के जैसे "अवतार" ही यह कर सकते हैं। यह बड़ी अजीब-सी भ्रान्त धारणा है; क्योंकि, इसके विपरीत, यह पथ सबसे सरल, सबसे सहज और सबसे ऋजु पथ है, और कोई भी व्यक्ति—अगर वह अपने मन और अपने प्राण को शान्त कर ले—इसका अनुसरण कर सकता है, यहाँ तक कि वे भी जिनके अन्दर तुमसे दसगुनी कम क्षमता है, इसे कर सकते हैं। तनाव, दबाव और घोर परिश्रम का दूसरा पथ सचमुच कठिन होता है और उसमें तपस्या की महान् शक्ति की आवश्यकता होती है। रही बात माताजी और मेरी, तो हमें सभी पथों को आज़माना पड़ा, सभी प्रक्रियाओं का अनुसरण करना पड़ा, कठिनाइयों के पहाड़ों को लाँघना पड़ा, तुमसे या आश्रम अथवा बाहर के किसी भी व्यक्ति से कहीं ज़्यादा भारी बोझ कठिनतम परिस्थितियों में ढोना पड़ा, घाव सहने पड़े, अगम्य दलदलों, तपते रेगिस्तानों और बीहड़ जंगलों से रास्ता निकालना पड़ा, विरोधी शक्तियों की राशि पर विजय पानी पड़ी, मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि हमें ऐसे-ऐसे कार्य करने पड़े जैसे हमसे पहले किसी को नहीं करने पड़े। क्योंकि हमारे जैसे कार्य में पथ-प्रदर्शक को न केवल भगवान् को नीचे लाना, उनका प्रतिनिधित्व करना, उन्हें मूर्त रूप देना होता है, बल्कि मानवता के अभीप्सा करने वाले, यानी आरोहणकारी तत्त्व का भी प्रतिनिधित्व करना

होता है, मानवता के बोझ को पूरी तरह से अनुभव करना होता है, मात्र लीला के तौर पर नहीं बल्कि कठोर गाम्भीर्य के साथ जीवन की सभी बाधाओं, मुसीबतों, अड़ंगों का सामना करना होता है, केवल तभी घोर परिश्रम के साथ पथ पर चलना सम्भव होता है। लेकिन न यह आवश्यक है न सह्य कि हम हमसे पहले आये लोगों की सम्पूर्ण अनुभूति को पहले दोहरायें। चूँकि सम्पूर्ण अनुभूति प्राप्त है इसलिए हम औरों को ऋजु तथा सरल पथ दरशा सकते हैं—अगर वे इसे अपनाना चाहें तो अपनायें। चूँकि हमने यह अनुभूति बहुत मूल्य देकर पायी है कि हम तुम्हें और दूसरों को प्रेरित कर बलपूर्वक कह सकते हैं कि "चैत्य मनोभाव अपनाओ; ऋजु तथा सूर्यालोकित पथ पकड़ो—भगवान् प्रकट या गुप्त रूप से तुम्हें सहारा दे रहे हैं—अगर गुप्त रूप से भी दे रहे हों तो उचित समय पर वे स्वयं को तुम्हारे सम्मुख प्रकट करेंगे—कठोर, बाधायुक्त, चक्करदार और कठिन पथ अपनाने का आग्रह मत करो।"

*CWSA खण्ड ३२, पृ. ९४-९५*

अब मैं स्वयं सूर्यालोकित पथ पर काफ़ी आगे बढ़ चला हूँ, और साथ ही मैं कठिनाई, दुःख-दर्द और ख़तरों से कभी पीछे नहीं हटा हूँ। सभी तरह की कठिनाइयों का पूरा भाग मेरे पल्ले आ चुका है और श्रीमाँ ने तो मुझसे दसगुनी ज़्यादा कठिनाइयाँ झेली हैं! इसका यही कारण है कि पथ खोजने वालों को सभी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है ताकि वे उन पर विजय पा सकें। ऐसी कोई कठिनाई नहीं है जो साधक के सामने मुँह बाये आ खड़ी हो और जिसे पथ पर हमने नहीं झेला हो; कई कठिनाइयों को जीतने से पहले हमें उनसे सौ-सौ बार लोहा लेना पड़ा है (वस्तुतः, यह तो मैं कम करके कह रहा हूँ); कई अभी तक यह कह कर डटी हुई हैं कि जब तक सम्पूर्ण पूर्णता धरती पर नहीं उतर आती, वे बनी रहेंगी। लेकिन हमने कभी यह स्वीकार नहीं किया है कि दूसरों के लिए भी ये अनिवार्य हैं। वास्तव में दूसरों का पथ सुगम बनाने के लिए हमने वह बोझ अपने कन्धों पर उठा लिया है। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए एक बार माँ ने प्रभु से प्रार्थना की थी कि पथ पर आने वाली सभी कठिनाइयाँ, ख़तरे, दुःख-दर्द दूसरों पर आने की बजाय उन पर आ जायें।

अब तक प्रभु ने उनकी सुनी है; यही कारण है कि जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा उन पर बनाये रखी है उनके सभी दैनन्दिन दुःख-कष्टों को वे बरसों से अपने ऊपर लिये हुए हैं ताकि वे सूर्यालोकित पथ का अनुसरण कर सकें, और जो उस पथ पर भले न चल पायें, लेकिन अपना सारा विश्वास माँ पर बनाये रखें, वे अचानक अपने पथ को आसान पायेंगे; और अगर वह फिर से मुश्किल बन जाये तो उन्हें समझ जाना चाहिये कि अविश्वास, विद्रोह, अभिमान और अन्धकार उन पर हावी हो रहे हैं। सूर्यालोकित पथ कपोल-कल्पना नहीं, सच्चाई है।

*CWSA खण्ड ३२, पृ. ४७१-७२*

श्रीमाँ ने तुमसे बस यह कहा था कि अगर तुम उनसे प्रार्थना करते (क्योंकि तुम्हारे कहे अनुसार, कृष्ण के प्रति की गयी तुम्हारी प्रार्थना का कोई असर नहीं हो रहा) तो तुम्हें जल्दी सहायता मिलती। यह केवल तुम्हारी सहायता करने के लिए था—वे तुम्हारे और बाक़ी सबके बहुत निकट हैं और यहाँ कितनों ने ही मात्र उनका सीधा आवाहन कर कितनी सहायता पायी है, बशर्ते कि उनके आवाहन में कोई शंका-सन्देह या भय न हो। अब भी यहाँ कई ऐसे हैं जो उसी समान बीमारी से उभर रहे हैं जिसमें तुम फँसे हो, जो कई सालों के लम्बे प्रहारों की आदत से मजबूर, अँधेरी निराशा में डूबे हुए, उन्हीं घिसे-पिटे सुझावों को दोहराते रहते हैं, जैसे—

"मैं अयोग्य हूँ, यह योग मेरे किसी काम का नहीं, कोई उत्तर मुझे मिलता ही नहीं, कोई अनुभूति होती ही नहीं, भगवान् मुझसे प्रेम ही नहीं करते। श्रीमाँ मुझसे दूर, बहुत दूर हैं, भला मैं कब तक यूँ ही घिसटता चला जा सकता हूँ, कोई भला ऐसे कैसे जी सकता है, मैं यहाँ से भाग जाऊँगा, मैं आत्महत्या कर लूँगा, इत्यादि।"

और ऐसे लोग अचानक अपनी अँधेरी गुफा से बस इसी कारण बाहर निकल रहे हैं क्योंकि वे सहज रूप से और सीधे श्रीमाँ की ओर खुलने में सफल हो गये।

*CWSA खण्ड ३२, पृ. १२१*

# साधना के रूप में प्रार्थना करना

## दैनिक प्रार्थनाएँ

*मैं कई प्रकार की प्रार्थनाएँ यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ जो मैं किया करता हूँ, और मैं आभारी होऊँगा यदि आप मुझे बतायें कि उनमें से कौन-सी बाह्य या आन्तरिक हैं, ठीक या ग़लत हैं, सहायक या बाधक हैं, अथवा उनमें क्या सुधार किया जाये जिससे वे पवित्र बन सकें :*

*१. रात के समय जब मैं पढ़ने बैठता हूँ और असमय मुझे नींद आ घेरती है तो मैं माताजी से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे नींद के आक्रमण से मुक्त करें।*

यदि तुम्हारा पढ़ना साधना का भाग है तो यह प्रार्थना बिलकुल ठीक है।

*२. सोते समय मैं माताजी से प्रार्थना करता हूँ कि उनकी शक्ति नींद के समय मेरी साधना को अपने हाथ में ले ले, उसे सचेतन और प्रकाशमय बनाये, मेरी रक्षा करे, मुझे उनके प्रति सचेतन बनाये रखे।*

*३. जब मैं नींद में किसी समय जाग जाता हूँ तो माताजी से प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरे साथ रहें और मेरी रक्षा करें।*

ये दोनों साधना के भाग हैं।

*४. सैर के लिए जाते समय और सैर करते समय मैं प्रार्थना करता हूँ कि माताजी मुझे अधिक व्यायाम करने तथा अधिक बल और स्वास्थ्य-लाभ करने की शक्ति दें और फिर सहायता के लिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ।*

यदि बल और स्वास्थ्य की प्रार्थना इसलिए की जाये कि वे साधना के लिए तथा आधार की पूर्णता के विकास के लिए आवश्यक हैं तो यह बिलकुल ठीक है।

*५. जब मैं सैर करते समय रास्ते में कोई कुत्ता देखता हूँ तो मैं तुरन्त माताजी से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे उसके आक्रमण से बचायें और मेरा भय दूर करें।*

रक्षा के लिए पुकार सदा ही उचित होती है। भय दूर करना साधना का अंग है।

*६. जब मैं खाना खाने जाता हूँ तो मैं प्रार्थना करता हूँ कि माताजी की शक्ति मेरी सहायता करे जिससे मैं प्रत्येक ग्रास माताजी को अर्पित कर सकूँ, हर चीज़ आसानी से हज़म हो जाये, मैं अपनी चेतना में पूर्ण समता और अनासक्ति का विकास कर सकूँ जो मुझे किसी भी आहार को बिना किसी आग्रह या चाह या लोभ-लालसा के विश्वगत आनन्द के समरस के साथ ग्रहण करने के योग्य बनाये।*

यह भी साधना का अंग है।

*७. जब मैं काम के लिए जाता हूँ तो प्रार्थना करता हूँ कि माताजी की शक्ति मेरा काम अपने हाथ में ले ले, मेरी सहायता करे और प्रेम, भक्ति एवं हर्ष के साथ, माताजी का स्मरण करते हुए, उनकी सहायता और सहारे का अनुभव करते हुए, बिना अहंकार या कामना के, अच्छी तरह और सावधानी से इसे करने की प्रेरणा दे।*

यह भी।

*८. काम के बीच भी, जब विराम होता है तो मैं शक्ति, सहायता और सतत स्मृति के लिए प्रार्थना करता हूँ।*

यह भी।

*९. जब कोई अपवित्र विचार एवं संवेदन मेरे अन्दर पैदा होते हैं तो मैं उनके निवारण के लिए और पवित्रता के लिए प्रार्थना करता हूँ।*

यह भी।

*१०. पढ़ते समय मैं यथासम्भव यह प्रार्थना करने का यत्न करता हूँ कि सब कुछ जल्दी से समझ जाऊँ, पूर्ण रूप से ग्रहण और आत्मसात् कर लूँ।*

यदि यह साधना के रूप में या आधार के विकास के लिए है तो यह

बिलकुल ठीक है।

*११. जब मैं काम में कोई भूल करता हूँ तो प्रार्थना करता हूँ कि अधिक सचेतन, सतर्क और निर्भ्रान्त बनूँ।*

यह भी साधना का भाग है।

*१२. जब मैं अपने मित्र के नाम प्रसाद का पार्सल पंजीकृत (रजिस्टर) कराने डाकखाने जाता हूँ तो प्रार्थना करता हूँ कि वह तुरन्त स्वीकार हो जाये और उसमें किसी प्रकार की देर न लगे।*

यह प्रार्थना की जा सकती है यदि समय के अपव्यय से बचने को साधना के जीवन की ठीक नियम-व्यवस्था का अंग समझा जाये।

*१३. जब मैं ध्यान के लिए बैठता हूँ तो प्रार्थना करता हूँ कि माताजी की शक्ति मेरी ध्यान-क्रिया को अपने हाथ में लेकर उसे गहरी, स्थिर एवं एकाग्र बनाये और विघ्नकारी विचारों, प्राणिक बेचैनी आदि के समस्त आक्रमणों से मुक्त करे।*

यह साधना का भाग है।

*१४. उदासी, कठिनाई, ग़लत सुझावों, सन्देह और जड़ता की अवस्था में, किसी भी अवसर पर या किसी भी घटना के समय मैं माताजी से प्रार्थना करता हूँ कि साहस और श्रद्धा बनाये रखूँ तथा उन सबका सामना कर उन पर विजय पाऊँ।*

यह भी।

*१५. सारे समय, जहाँ तक मुझसे बन पड़ता है, मैं माताजी से प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे अपनी शान्ति, शक्ति और ज्योति आदि से भर दें, या फिर और किसी प्रकार की अपेक्षित प्रार्थना करता हूँ, और मुझे सहायता, बल और सहारा देने के लिए उन्हें धन्यवाद देता हूँ।*

यह भी।

*CWSA खण्ड ३२, पृ. ३१५-१७* —श्रीअरविन्द

## श्रीअरविन्द द्वारा दिये गये कुछ मन्त्र

## श्रीअरविन्द का गायत्री मन्त्र

*तत्सवितुः वरं रूपं ज्योतिः परस्य धीमहि, यन्नः सत्येन दीपयेत्।*

सविता के परम मंगलकारी (वरेण्य) रूप का, परात्पर की ज्योति का हम ध्यान करें। वह हमें 'सत्य' से प्रदीप्त करे। (श्रीअरविन्द का अनुवाद)

## मंगल-प्रार्थना

*असतो मा सद्गमय।*
*तमसो मा ज्योतिर्गमय।*
*मृत्योर्माऽमृतं गमय।।*
*ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।*

(मुझे ले चल)
असत् से सत् की ओर,
तम से ज्योति की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर।
ॐ शान्ति! शान्ति! शान्ति!

(बृहदारण्यक उपनिषद् १.३.२८)

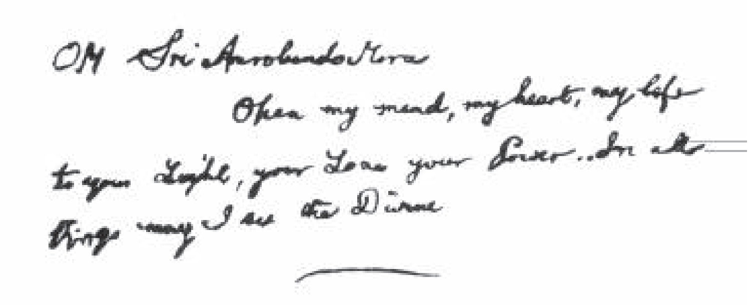

OM Sri Aurobindo Mira
Open my mind, my heart, my life
to your Light, your Love your Power. In all
things may I see the Divine

*ॐ श्रीअरविन्द-मीरा*
*मेरे मन, मेरे हृदय, मेरे प्राण को*
*अपने प्रकाश, अपने प्रेम, अपनी शक्ति की ओर खोल दो।*
*सभी वस्तुओं में मैं भगवान् ही को देखूँ।*

*ॐ श्रीअरविन्द-मीरे*
*उन्मीलय मनो मे त्वं हृदयं जीवनं तथा।*
*तव ज्योतिः प्रति प्रेम शक्तिञ्चापि प्रति प्रभो।*
*पश्येयं सर्वभूतेषु भगवन्तं परात्परम्।।*

एक साधक ने श्रीअरविन्द से उनके और श्रीमाँ के नाम से युक्त एक संक्षिप्त प्रार्थना मन्त्र के रूप में प्रयोग में लाने के लिए माँगी थी। उन्होंने उसे यह उपर्युक्त मन्त्र दिया था। इसे देते हुए उन्होंने लिखा था :

"मैंने तुम्हारे लिए नामों से युक्त एक संक्षिप्त प्रार्थना मन्त्र के रूप में लिखी है। मुझे आशा है यह तुम्हें अपनी कठिनाई पर विजय पाने और आन्तरिक आधार प्राप्त करने में सहायता देगी।" (१६ जुलाई १९३८)

*"क्या मुझे नामों और प्रार्थना को एक ही मन्त्र समझना चाहिये?"*

श्रीअरविन्द ने उत्तर दिया : "हाँ"। (१८ जुलाई १९३८)

## दैनिक कार्यक्रम

शारीरिक, प्राणिक और मानसिक विकास के लिए एक बँधे हुए कार्यक्रम की यान्त्रिक नियमितता ज़रूरी है; परन्तु इस यान्त्रिक कठोरता का आध्यात्मिक विकास पर नहीं के बराबर या बहुत ही कम प्रभाव होता है जिसमें सम्पूर्ण सच्चाई या निष्कपटता का सहज भाव अनिवार्य है।

श्रीअरविन्द ने इस विषय में बहुत स्पष्ट रूप से लिखा है और उन्होंने जो लिखा है वह 'योग-समन्वय' में छपा भी है।

फिर भी, मार्ग पर चलने के लिए आरम्भिक सहायता के रूप में मैं तुमसे कह सकती हूँ : १. सवेरे उठ कर, दिन आरम्भ करने से पहले, भगवान् के प्रति दिन का उत्सर्ग करना अच्छा है, तुम जो कुछ सोचते हो, तुम जो कुछ हो, तुम जो कुछ करोगे उस सबका उत्सर्ग; २. और रात को सोने से पहले, ज़्यादा अच्छा है कि सारे दिन पर नज़र डाल लो, उन अवसरों की ओर ध्यान दो जब तुम अपना और अपनी समस्त क्रियाओं का भगवान् के प्रति उत्सर्ग करना भूल गये या उसकी अवहेलना की, और यह अभीप्सा करो कि ये भूलें फिर से न होने पायें।

यह कम-से-कम है, बहुत ही छोटा-सा आरम्भ—और इसे तुम्हारे समर्पण की वृद्धि के साथ-साथ बढ़ना चाहिये।

*–'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ३५७-५८*

*जब कठिनाइयाँ आयें तो अपने अन्दर अचञ्चल बने रहो और उन्हें दूर करने के लिए श्रीमाँ की शक्ति को पुकारो।*

*

*सदा श्रीमाँ को पुकारना और उसके साथ-साथ अभीप्सा करना और जब ज्योति आये तब उसे स्वीकार करना, कामना-वासना और प्रत्येक अन्धकारपूर्ण क्रिया का त्याग करना तथा उनसे अपने को पृथक् रखना —यही प्रधान चीज़ है। परन्तु यदि कोई अन्य चीज़ों को सफलतापूर्वक न कर सके फिर भी उसे पुकारना चाहिये और बार-बार पुकारना चाहिये।*

*श्रीमाँ की शक्ति को जब तुम अनुभव नहीं करते तब भी वह तुम्हारे साथ रहती है; स्थिर-अचञ्चल बने रहो और अपने प्रयास में दृढ़तापूर्वक लगे रहो।*

*—श्रीअरविन्द*

# दीप्तियों की माता का स्तवन

(१)

अँधेरी गुफाओं में आते हुए प्रकाश की न्याईं एक आन्तरिक पूर्णता आयी है। वह जीवन की बहुविध तन्त्रियों को भरती, प्रकाशित करती और स्पन्दित करती है। उसने भूतकाल की भूली-बिसरी उपलब्धियों के साथ सम्पर्क पा लिया है ताकि मैं वर्तमान की बदलती हुई रचनाओं के आधार पर भविष्य की नयी प्राप्तियों के साथ नये नाते जोड़ सकूँ। जीवन-लहरियाँ उच्चतर स्वर्ग से कुत्सित और अन्धकारमय को ज्योतिर्मय और सत्य में बदलने के लिए, कुरूप और अनुचित को सुन्दर और उचित में बदलने के लिए नीचे उतरती हुई प्रकाश की किरणों से मिलने के लिए ऊपर उठ रही हैं।

हे दीप्तियों की माँ! तुम मेरे मन के संकीर्ण क्षितिज में उदित हुई हो। तुमने उसकी अथाह कठोरताओं में से, उसके घिरे हुए अन्तरालों के बीच हृदय के जैसी चीज़ बनायी है जो शाश्वत जीवन जियेगी। तुमने मन के पदार्थहीन ध्रुव क्षेत्रों के अन्दर एक जीवन्त और ऊष्माभरा कक्ष प्रकट किया है जिसमें मैं चैन से आराम कर सकता हूँ और तुम्हारे अन्दर शरण पा सकता हूँ।

गतिशील शक्तियों का निचला जाल बाक़ी है। लेकिन मैं उसके बीच भी तुम्हारी उपस्थिति का अनुभव करता हूँ। गतिशील शक्तियों का उच्चतर जाल बना हुआ है और यहाँ भी तुमने जीवन की ऐसी ऊष्मा बिखरते हुए पदार्पण किया है जो वहाँ पहले न थी। तुमने मन्द धूसर दीप्ति को जीवित-जाग्रत् जलों की प्रभा में बदल दिया है। तुम्हारी सक्रिय और जीवित-जाग्रत् उपस्थिति हर जगह है। तुमने मेरी अभीप्सा के शब्दों पर, अपनी सर्वव्यापकता के लिए मेरी माँग की आग पर ध्यान दिया है। मैंने अपने अज्ञान में जो कुछ माँगा था तुमने उससे ज़्यादा प्रकट किया है। जब मैं सत्य और विधान के साथ रहूँ तो तुम मेरे साथ एक और घनिष्ठ रहती हो, और जब मैं भ्रान्ति और मिथ्यात्व में होऊँ तो तुम मुझसे दूर और परे रहती हो।

जब मेरे चारों ओर अँधेरी छायाएँ न हों, जब तुम देखो कि मैं अपनी सत्ता के हर भाग में पाखण्ड और दिखावे से ख़ाली हो गया हूँ, जब तुम

मेरे शरीर के प्रत्येक कोषाणु को अपने लिए शाश्वत गृह या शाश्वत मन्दिर के रूप में देखो, जब तुम मुझे अपने साथ तादात्म्य होकर भी तुम्हारी पूजा करते देखो, जब तुम ज्ञान के ठोस सोने को भक्ति के बहते सजीव जलों में पिघला दो, जब तुम मेरी धरती को तोड़ करके ऊर्जाओं को मुक्त करो, जब तुम मेरे घमण्ड को अपने हाथ में शक्ति और मेरे अज्ञान को प्रकाश में, मेरी संकीर्णता को विशालता में, मेरी स्वार्थपरता की शक्तियों को एक केन्द्र पर सञ्चित करने में, मेरे लोभ को सत्य के पदार्थ को पाने के लिए अथक खोज की क्षमता में, मेरे अहंकार को सच्चे और सचेतन सहायक केन्द्र में, मेरे मन को तुम्हारे उतरने के लिए एक मार्ग में, मेरे हृदय को शुद्ध अग्नि और ज्वाला की तुम्हारी वेदी में, मेरे जीवन को तुम्हारे काम में आने वाले शुद्ध और पारभासी पदार्थ में, मेरे शरीर को तुम्हारा जो कुछ मेरे लिए हो उसे धारण करने वाले सचेतन पात्र में बदल दो तभी हे दीप्तियों की जननी, इह जीवन और भावी जीवन में मेरे जीवन की सच्चे, उचित और विस्तृत अर्थों में लक्ष्यपूर्ति होगी। मेरे अन्दर अभीप्सा जाग रही है! मैं जिन-जिन चीज़ों के लिए धधक रहा हूँ उन्हें मेरे अन्दर सम्पादित करो।

## (२)

मेरे अन्दर चेतना की ऐसी अवस्था पैदा करो कि मैं तुमसे जो कुछ सुनूँ वह तुरन्त अन्तरतम ज्ञान में, अपने अन्तःप्रकाश, तादात्म्य की अभिव्यक्ति, आन्तरिक और बाह्य की युगपत् अभिज्ञता में बदल जाये। हे माँ! वर दे कि, मैं तुझसे जो कुछ इकट्ठा करूँ वह अन्तर की उन बृहत् गहराइयों का हो जो सर्वव्यापी है। मैं हर तरह से तुम्हारे साथ एक होऊँ ताकि परम 'आनन्द' पा सकूँ, फिर भी तुमसे अलग रहूँ ताकि तुम्हारी ओर भक्ति प्रवाहित कर सकूँ। एक और फिर भी भिन्न—जैसे जीवन और उसकी गतिविधियाँ, जैसे गरमी और प्रकाश, जैसे शक्ति और उसकी अभिव्यक्ति, जैसे सच्चा ज्ञान और उसकी सम्पन्न करने वाली शक्ति। तुम मुझे जो कुछ प्रदान करो वह मेरे लिए एक निधि न होकर मानों मेरे अपने आत्मशोध की चीज़ हो।

मेरी चेतना में से विभाजन को पोंछ डालो ताकि मैं तुम्हें अपने ही अंग के रूप में देख और सुन सकूँ। मेरे अन्दर की जीवन-शक्तियाँ तुम्हारे साथ तादात्म्य से आने वाले ज्ञान, तुम्हारे साथ तादात्म्य से उत्पन्न अन्तर्दर्शन

और ऐसे श्रवण के लिए अभीप्सा करती हैं जो तादात्म्य से दिशा पाता है—ऐसा तादात्म्य जो स्वयं तुम हो।

वर दे कि मैं तेरे असीम और द्युतिमान् देश में तेरे एक भाग की अभिव्यक्ति बनूँ।

**(३)**

मेरी अभीप्सा की अग्नि को धधकाओ, मेरे अन्दर समर्पण को तुरन्त और हर प्रकार से सम्भव बनाओ, मेरे उद्घाटन और मेरी ग्रहणशीलता को विस्तृत बनाओ, उन आवरणों को हटा दो जो मेरे अन्तस्तल की गहराइयों में चैत्य की क्रियाओं में विलम्ब करते हैं। हे माँ, मेरे पास जो कुछ है और मेरे पास जो नहीं है उसे मुझसे ले लो...

हे दीप्तियों की माँ! मेरे शरीर के कोषाणु, मेरे स्नायविक आवरण के तन्तु, मेरे प्राण की पाँचों धाराएँ, मेरे हृदय की अग्नियाँ, मेरे मन की शक्तियाँ—तुम्हारे प्रति बिना शर्त समर्पण करते हैं, ताकि जीवन में मिथ्यात्व न रहे, चेतना में विभाजन, जीवित जलों में मृत्यु न रहे, स्नायविक कुण्डली में सामञ्जस्य का अभाव न हो और दुःख-दैन्य तथा शरीर में रोग न रहें...

तेरी वाणी मुझे उत्तर देती है :

"भौतिक में समर्पण की पाँचगुनी शक्तियों द्वारा, तुम्हारे केन्द्र के पीछे जो चैत्य प्रेरणा है उसकी निश्चल तीव्रता द्वारा, हमेशा, हमेशा अपने अन्दर निहित आनन्द और अपनी चेतना में छिपी समृद्धियों को बढ़ाओ। सबसे पहले उसके बारे में सचेतन होओ जो मैंने तुम्हारे अन्दर चाहा है और फिर वह बनो जिसके बारे में तुम सचेतन हुए हो। तुरन्त, सदा के लिए यह जान लो कि 'तुम्हारा सर्वस्व मेरे अन्दर है'।"

—अमृत दा

*पाद टिप्पणी : 'दीप्तियों की माता के सम्मुख स्तवन' शीर्षक तले यह लेख अमृत (आश्रम के एक साधक) ने जनवरी १९२७ में लिखा था। बाद में अमृत की पाण्डुलिपि को श्रीअरविन्द ने जाँच कर तीन अंशों में व्यवस्थित कर दिया। संशोधित प्रति भी उन्होंने अपने ही हाथों से लिखी।*

'पुरोधा' :

# दैनन्दिनी

**जुलाई**

१. जो सच्चाई के साथ कृपा पर विश्वास करते हैं उनके लिए कृपा का कोई अन्त नहीं होता।

२. जगत् उसी अनुपात में अच्छा होगा जिस अनुपात में हम अपने-आपको अच्छा बना सकेंगे।

३. कोई ऐसी चीज़ न करो जिसे तुम जानते हो कि वह नहीं करनी चाहिये। जब तुमने अपनी सत्ता में कोई दुर्बलता, कोई अयोग्यता देख ली है तो तुम्हें उसे दोबारा नहीं होने देना चाहिये।

४. निराशा कभी भी विकास के लिए आवश्यक नहीं होती, यह सदा दुर्बलता और तमस् का चिह्न होती है। यह प्रायः किसी विरोधी शक्ति की उपस्थिति की द्योतक होती है, एक ऐसी शक्ति की जो जान-बूझकर साधना के विरोध में काम करती है।

५. एक सुरक्षित और शान्त जीवन लोगों को सुखी बनाने के लिए काफ़ी नहीं है। एक आन्तरिक विकास आवश्यक है और एक ऐसी शान्ति भी जो भगवान् के साथ सचेतन सम्पर्क से आती है।

६. तुम्हारे गुण ऐसे न हों जिन्हें मनुष्य सराहें या पुरस्कृत करें, बल्कि ऐसे हों जो तुम्हें पूर्णता प्रदान करें, जिनकी तुम्हारी प्रकृति में निवास करने वाले भगवान् तुमसे माँग करते हैं। (श्रीअरविन्द)

७. प्रकृति में क्रोध की शक्ति को कम करने और बाद में उससे पूरी तरह पिण्ड छुड़ाने का सबसे पहला उपाय यही है कि उसको अभिव्यक्त करने से बिलकुल इन्कार करो; न क्रियाओं में और न ही शब्दों में उसे प्रकट होने दो। इसके बाद तुम ज़्यादा सफलता के साथ उसे विचार और भावना से भी निकाल बाहर कर सकते हो। सभी ग़लत गतिविधियों के साथ यही बात है।

८. हमेशा अपने अन्दर की अभीप्सा पर बल दो, उसे हृदय में गहराई और स्थिरता पाने दो; मन तथा प्राण की बाहरी बाधाएँ हृदय के प्रेम तथा अभीप्सा के विकास के साथ-साथ अपने-आप ही पीछे हट जायेंगी।

९. तुम्हें पुराने सामान्य जीवन, उसके नियमों और रूढ़ियों तथा भागवत चेतना की ओर ले जाने वाले नये जीवन के बीच चुनाव करना होगा। चुनाव करके निश्चय करो।

१०. मन और हृदय को खुला और अन्दर तथा ऊपर की ओर मुड़ा रखो ताकि जब अन्दर से स्पर्श आये या ऊपर से प्रवाह उतरे तब तुम उसे ग्रहण करने के लिए तैयार रहो।

११. हमें अपनी सत्ता की गहराइयों में छिपी पूर्णता, शक्ति, सुन्दरता तथा सत्य को सर्वांगीण रूप से जीना चाहिये। तभी समस्त जीवन उदात्त, शाश्वत, भागवत परम हर्ष की अभिव्यक्ति बनेगा।

१२. जो ज्ञान तुम्हारे पास बाहर से आता प्रतीत होता है वह तुम्हारे अन्दर स्थित ज्ञान को बाहर लाने का केवल एक अवसर होता है।
ऐसा हो कि जीवन की सभी परिस्थितियाँ, सभी घटनाएँ हमेशा अधिक-से-अधिक सीखने के ऐसे अवसर बनें जो सतत रूप से नवीकृत होते रहें।

१३. एक ऐसा बुढ़ापा भी है जो वर्षों के संग्रह से भी कहीं अधिक ख़तरनाक और कहीं अधिक वास्तविक है : वह है विकसित होने और प्रगति करने की अक्षमता।

१४. अच्छाई से प्रेम के कारण अच्छा बनना चाहिये, ईमानदारी से प्रेम के कारण ईमानदार होना चाहिये, पवित्रता से प्रेम के कारण पवित्र होना चाहिये और निस्स्वार्थता से प्रेम के कारण निस्स्वार्थ होना चाहिये; तब यह निश्चित है कि तुम राह पर आगे ही आगे बढ़ोगे।

१५. हमेशा आन्तरिक अभीप्सा पर ज़ोर दो, उसे हृदय में गभीरता और स्थिरता पाने दो। हृदय के प्रेम और अभीप्सा के विकास के साथ-साथ मन और प्राण की बाहरी बाधाएँ अपने-आप पीछे हट जायेंगी।

१६. अपनी अभीप्सा में लगे रहो तो तुम्हारा स्वप्न चरितार्थ होकर रहेगा।

१७. जो ऊपर से देखने में एकदम से नगण्य चीज़ मालूम होती है उसे भी हमें पूर्ण पूर्णता के साथ, स्वच्छता, सौन्दर्य, सामञ्जस्य और सुव्यवस्था के भाव के साथ करना चाहिये।

१८. लोगों की प्रतिक्रियाओं के बारे में चिन्तित न होओ चाहे वे कितनी भी अप्रिय क्यों न हों—प्राण सर्वत्र और सबमें, अशुद्धताओं से भरपूर होता

है और भौतिक होता है निश्चेतना से भरा हुआ। इन दो अपूर्णताओं को ठीक करना होगा, चाहे जितना समय क्यों न लगे, हमें बस इसके लिए धैर्यपूर्वक तथा साहस के साथ कार्य करते रहना होगा।

१९. स्वभावतः कार्य विशेष रूप से अनुभूति का क्षेत्र है जहाँ तुम आन्तरिक प्रयास से की गयी सारी प्रगति को प्रयोग में ला सकते हो।
अगर तुम कार्य किये बिना केवल ध्यान और निदिध्यासन में लगे रहो तो तुम यह नहीं जान पाते कि तुमने प्रगति की है या नहीं।

२०. भौतिक जगत् में, सभी चीज़ों में सौन्दर्य ही सबसे अच्छी तरह भगवान् को प्रकट कर सकता है।

२१. जो उत्साही और निष्कपट होते हैं, भगवान् हमेशा उनके साथी होते हैं।

२२. स्पष्ट कहना और खुला रहना हमेशा अधिक अच्छा होता है। ग़लतियाँ सुधारने का यह सबसे अच्छा तरीक़ा है।

२३. ... स्वयं साधना के लिए ही हम साधना करना नहीं चाहते। हम तो यह चाहते हैं कि हम जो कुछ करें उस सबमें, सारे समय, अपने सभी कर्मों में और प्रत्येक मुहूर्त भगवान् पर एकाग्र रहें।

२४. विरोधी शक्तियों का सामना करने का सर्वोत्तम पथ है, सदा अभीप्सा करना, सर्वदा भगवान् को स्मरण करते रहना; और कभी भय न खाना।

२५. एकमात्र सच्चा मनोभाव है विनम्रता का भाव, तुम जो कुछ नहीं जानते उसके सम्मुख नीरव आदर का भाव और अपने अज्ञान से बाहर निकल आने के लिए एक आन्तरिक अभीप्सा का भाव।

२६. मनुष्य जो कुछ थोड़ा-बहुत जानता है, उसे जीवन में उतारना ही अधिक जानने का उत्तम तरीक़ा है; यह पथ पर आगे बढ़ने का सबसे अधिक शक्तिशाली उपाय है—बस, थोड़ा-सा जीवन में लाने का प्रयास हो, पर हो बहुत सच्चा।

२७. सफलता से प्रभावित हुए बिना सफल होने के लिए व्यक्ति को बहुत महान्, बहुत पवित्र होना चाहिये, उसकी आध्यात्मिक चेतना बहुत ऊँची और बहुत अनासक्त होनी चाहिये। सफल होने से बढ़ कर कठिन कोई चीज़ नहीं है। यही जीवन की सच्ची परीक्षा है।

२८. वस्तुतः सभी चीज़ों में छिपी हुई सद्‌भावना अपने-आपको सभी

स्थानों पर उस व्यक्ति के सम्मुख प्रकट करती है जो अपनी चेतना में सद्भावना लिये रहता है।
यह अनुभव करने की रचनात्मक विधि है जो सीधा भविष्य की ओर ले जाती है।

२९. शान्ति के साथ ख़ुश रहने से बढ़ कर भगवान् के प्रति कृतज्ञता दिखलाने का और कोई सुन्दर तरीक़ा नहीं है।

३०. निश्चय ही अचञ्चल होने का मतलब तामसिक होना नहीं है। वास्तव में उचित चीज़ अचञ्चलता में ही हो सकती है। जिसे मैं अचञ्चल होना कहती हूँ वह है, किसी भी चीज़ से विक्षुब्ध हुए बिना अपना काम करते जाना और किसी भी चीज़ से क्षुब्ध हुए बिना हर चीज़ का निरीक्षण करना।

३१. अपने मन को पूरी तरह अपनी कठिनाई से मोड़ लो और पूरी तरह ऊपर से आने वाली ज्योति और शक्ति पर केन्द्रित रहो और भगवान् तुम्हारे शरीर के साथ जो करना उचित समझें उन्हें करने दो। अपनी भौतिक सत्ता की पूरी-पूरी ज़िम्मेदारी उनके ऊपर छोड़ दो।
**यही उपचार है।**

**'दिव्य शरीर में दिव्य जीवन'**

# श्रद्धा

मनोवैज्ञानिक पक्ष का दूसरा गुण है श्रद्धा। श्रीअरविन्द ने उसका बहुत स्पष्ट वर्णन किया है। तुम यह नहीं कह सकते कि पहले मुझे अनुभूति होनी चाहिये, अगर भगवान् पहले मेरी सहायता करें तो मैं उन पर श्रद्धा करूँगा। किसी मनुष्य ने मज़ाक में भगवान् से प्रार्थना की थी, "आप मुझे दस लाख रुपये दे दें तो मैं आधे आपको अर्पण कर दूँगा, अगर आपको मुझ पर विश्वास न हो तो चलिये आधे ही दे दीजिये बाक़ी आधे आप रख लीजिये।" भगवान् की ओर हम श्रद्धा नहीं, अविश्वास के साथ जाते हैं। भगवान् तुम पर अविश्वास नहीं करते, तुम उन पर अविश्वास करते हो। "ओह, अगर मैं भगवान् पर निर्भर रहूँ तो हो सकता है कि वे मुझे ग़लत

राह दिखायें, हो सकता है कि मैं किसी मुश्किल में पड़ जाऊँ।" यह भगवान् की ओर जाने का एक ग़लत तरीक़ा है क्योंकि तुम्हारे मन में भगवान् का स्पष्टविचार नहीं है। तुम किस भगवान् की पूजा करते हो? क्या तुम सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, अनुकम्पामय भगवान् को पूजते हो? तब फिर सवाल ही क्या है? तुम यह कल्पना ही कैसे कर सकते हो कि वे तुमको ग़लत राह दिखा सकते हैं? तुम यह स्वप्न भी कैसे देख सकते हो कि सर्वव्यापक भगवान् तुम्हारी रक्षा नहीं करेंगे? यह एकदम असम्भव है...।

जानने-योग्य ज़रूरी चीज़ यह है कि एक बार तुमने अपना जीवन भगवान् के साथ जोड़ दिया है तो कोई ग़लती नहीं हो सकती। श्रीअरविन्द कहते हैं कि श्रद्धा तुम्हारी आत्मा के अन्दर एक ऐसी चीज़ है जो विश्वास करती और जानती है कि भगवान् का अस्तित्व है। वे तुम्हारी रक्षा करेंगे, वे तुम्हारा ख़याल रखेंगे। यह ऐसी श्रद्धा है जिसे तुम सचमुच अपने मन के द्वारा नहीं समझ सकते, यह तुम्हारी अन्तरात्मा से आती है, तो तुम्हें अपने अन्दर यह श्रद्धा पैदा करनी चाहिये...

अगर तुम्हारे अन्दर श्रद्धा की चाह हो तो तुम हिसाब-किताब नहीं कर सकते। यह न सोचो कि श्रद्धा एक पैराशूट है, तुम सब तरह की सावधानी बरतते हो जैसे सरकस में नीचे जाल बिछा हो और फिर उसके बाद छलाँग लगाते हो। यह श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा यह है कि भगवान् हैं, मैं उनके लिए कार्य कर रहा हूँ। वे मेरी देखभाल करेंगे। जब तुम देखोगे कि यह चीज़ जीवन में सफल होती है तो तुम्हारी श्रद्धा भी बढ़ती है।

कुछ वर्ष पहले हमारे आगे एक बड़ी, बहुत बड़ी समस्या थी जिसमें से निकलने का कोई उपाय न दीखता था, लेकिन हमें श्रद्धा थी कि श्रीअरविन्द उपस्थित हैं और यह समस्या हल हो जायेगी और हुआ भी ठीक ऐसा ही और समस्या हल हो गयी। श्रद्धा के बिना प्रगति नहीं होती क्योंकि योग पूरी तरह से भगवान् के प्रति समर्पण है। श्रद्धा के बिना व्यक्ति भला अर्पण कैसे कर सकता है? अपने-आपको भगवान् के प्रति अर्पण करने के लिए तुम्हारे अन्दर किसी-न-किसी तरह की श्रद्धा होनी ही चाहिये।

यहाँ मुझे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की एक कहानी याद आती है जिसमें यह बात बड़ी अच्छी तरह से बतलायी गयी है। इस कहानी में एक भिखारी भीख माँगने के लिए निकला। उसने देखा कि भगवान् अपने सोने के रथ

में चले आ रहे हैं। भगवान् ने उसकी तरफ़ देखा, मुस्कुराये और रथ रोक कर वहीं उतर गये। भिखारी ने सोचा, अब उसकी दरिद्रता के दिन गुज़र गये, वह जाकर भगवान् के आगे अपनी झोली पसार देगा। लेकिन वह अपना हाथ फैलाता उससे पहले स्वयं भगवान् ने उसके आगे अपने हाथ पसार दिये। भिखारी ने सोचा, भगवान् एक क्रूर मज़ाक कर रहे हैं। भिखारी ने अपनी झोली से चावल का एक दाना निकाल कर भगवान् की हथेली पर रख दिया। वह बड़ा दुःखी और निराश घर वापस आया। शाम को जब उसने झोली झाड़ी तो देखा कि चावल का उसका एक दाना सोने का बन गया था। वह पछता कर रो पड़ा, "अरे, मैंने अपना सब कुछ भगवान् को क्यों न दे दिया?" यह एक बहुत सच्ची आध्यात्मिक अनुभूति है। यह कल्पना नहीं है। धूल को सोने में बदलने का सच्चा रहस्य है समर्पण। तुम अपना मन भगवान् के अर्पित कर दो तो तुमको मिलता है ज्ञान, तुम अपनी इच्छा-शक्ति उन्हें दे दो तो तुम्हें मिलती है शक्ति, अपना शरीर अर्पित कर दो तो तुम्हें स्वास्थ्य और सौन्दर्य-लाभ होता है, अपना चैत्य अर्पित करो तो प्राप्त होता है प्रेम। यह समुद्र में एक बूँद के मिलने-जैसा है। अगर तुम हमेशा हिचकिचाते रहो तो समुद्र में मिल कैसे सकते हो? अगर तुम पानी से डरते रहो तो तैर नहीं सकते। तुम्हें डुबकी लगानी होगी और वह भी बिना संकोच के। तुमको डुबकी लगानी होगी क्योंकि उसके बिना कोई और उपाय नहीं है। तुम्हें अपने-आपको भगवान् के प्रति अर्पित करना चाहना चाहिये और बाक़ी सब उनके ऊपर छोड़ दो। वे तुम्हारी रक्षा करें या न करें। क्या इससे तुम्हें कोई हानि होती है या उन्हें हानि होती है? तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ता क्योंकि हर हालत में तुम्हें मरना ही होगा, भले बीस वर्ष बाद में क्यों न हो। लेकिन वे तुम्हें कैसे छोड़ सकते हैं? उन्होंने सैकड़ों वर्षों से यह परम्परा बना रखी है कि जो भी मेरी शरण में आयेगा मैं उसकी रक्षा करूँगा, मैं उसकी देखभाल करूँगा। वे तुम्हारे लिए सब कुछ करेंगे। तुम कर ही क्या सकते हो? तुम कुछ नहीं कर सकते। परम्पराएँ वैसी ही बनी रहेंगी जैसी सैकड़ों वर्षों से चली आ रही हैं। श्रद्धा रखो और डुबकी लगाओ। डुबकी लगाये बिना योग में कोई प्रगति नहीं होती।

(क्रमशः)

*–नवजात जी*

# समर्पण

*क्या समर्पण के बिना सत्ता का रूपान्तर सम्भव नहीं है?*

अगर समर्पण नहीं किया गया तो पूरी सत्ता का रूपान्तरण हो ही नहीं सकता।

*साधक में सच्चा आत्म-उत्सर्ग कैसे लाया जाता है?*

अहंकार और कामना का अनुकरण किये बिना। अहंकार और कामना ही समर्पण में बाधा डालते हैं।

*कौन-सा संकेत यह सूचित करता है कि साधक का भगवान् के प्रति समर्पण करने का दृढ़ निश्चय उसके जीवन में वास्तविक प्रभाव ला रहा है?*

संकेत यह है कि बिना सवाल किये, विद्रोह या माँग, या किसी भी शर्त के बिना, उसके अन्दर पूरी आज्ञाकारिता होती है और यह कि वह सभी भागवत प्रभावों को प्रत्युत्तर देता है और उन सबको दूर हटा देता है जो भगवान् से नहीं आते।

*क्या यह तथ्य नहीं है कि दृढ़ संकल्प के साथ बार-बार समर्पण करने के बावजूद पुरानी आदतें उसकी प्रभावशाली उपलब्धि के रास्ते में बाधा बन कर आ खड़ी होती हैं?*

हाँ, निःसन्देह—वे तब तक हमेशा ही ऐसा करती रहेंगी जब तक कि सच्चाई, शुद्धि और समर्पण पूर्ण न हो जायें।

*समर्पण को तीव्रता से प्रभावशाली बनाने का सबसे शक्तिशाली उपाय कौन-सा है?*

सम्पूर्ण निष्कपटता।

*भगवान् कब साधना को स्वयं अपने हाथों में पूरी तरह से लेकर उसे साधकों के लिए आगे बढ़ाते हैं?*

जब साधक अपने अहंकार को छोड़ देते हैं।

*भगवान् का साधना को अपने हाथ में ले लेने का क्या अर्थ है?*

जब दिव्य शक्ति समस्त योग और उसकी क्रियाओं को उस प्रत्यक्ष क्रिया के द्वारा क्रियान्वित करती है जिसके प्रति साधक सचेतन होता है।

*व्यक्ति को यह कैसे पता चलता है कि उसकी साधना भगवान् ने अपने हाथों में ले ली है?*

तुम उसे अनुभव कर सकते हो।

*'गीता' का केन्द्रीय रहस्य है—"सर्वधर्मान् परित्यज्य"—सभी धर्मों का परित्याग कर, ईश्वर को समर्पण करो। "सर्वधर्म" का क्या अर्थ है?*

मानसिक पसन्दों पर आधारित सभी रचनाएँ—प्राणिक लालसाएँ और शरीर की अपनी आदतों से आसक्ति।

*अपनी साधना के आरम्भ से ही सभी धर्मों का परित्याग करना क्या साधक के लिए सम्भव है?*

नहीं, उसमें समय लगता है—परन्तु समर्पण करने की इच्छा का होना ज़रूरी है।

*अपने स्वभाव की सभी गतिविधियों को भगवान् को समर्पण करने के लिए सबसे पहले ज़रूरी है, उनका ध्यान से निरीक्षण करना। निरीक्षण करने की इस शक्ति को सच्चा और पूर्ण कैसे बनाया जाये?*

सतर्कता के साथ उन्हें देखते और उनका निरीक्षण करते रहना, अपने-आपका निरीक्षण करते समय कोई चीज़ छूटे नहीं और जब तक यह कार्य पूरा न हो जाये तब तक दृष्टि की अधिक महान् शक्ति के लिए अभीप्सा करना।

*सक्रिय और निष्क्रिय समर्पण में क्या अन्तर है?*

सक्रिय समर्पण वह है जब तुम अपनी इच्छा को 'भागवत इच्छा' के साथ जोड़ देते हो और उस सबको त्याग देते हो जो भगवान् नहीं है तथा उसे स्वीकार करते हो जो भगवान् है। निष्क्रिय समर्पण वह है जब तुम सब कुछ भगवान् पर छोड़ देते हो—जो बहुत कम लोग कर सकते हैं, क्योंकि अभ्यास करते हुए तुम्हारा समर्पण इस बहाने निम्न प्रकृति की ओर मुड़ जाता है कि तुम भगवान् को समर्पण कर रहे हो।

*"ब्योरेवार समर्पण" का क्या मतलब है—वह पुष्प जिसे श्रीमाँ कभी-कभी देती हैं।*

हर क्रिया में और अपनी प्रकृति के प्रत्येक ब्योरे में समर्पण।

*क्या यह सच है कि जब तक साधक पूरी तरह से निष्कपट और अपने समर्पण में पूर्ण नहीं होता, उसे बहुत सारे दुःख-दर्दों का सामना करना पड़ता है?*

अगर वह सही रास्ता चुने तो उसे दुःख झेलने की कोई आवश्यकता ही नहीं, परन्तु उसे मुश्किलों के साथ तो जूझना ही पड़ता है।

*"वार्तालाप"[१] में श्रीमाँ कहती हैं कि अगर केन्द्रीय सत्ता का समर्पण हो जाये तो मुख्य कठिनाई चली जाती है। केन्द्रीय सत्ता क्या है? क्या वह चैत्य है?*

केन्द्रीय सत्ता 'पुरुष' है। अगर उसका समर्पण हो जाये तो फिर बाक़ी सभी सत्ताओं को भगवान् को समर्पित किया जा सकता है और चैत्य सत्ता को सामने लाया जा सकता है।

*'पुरुष' का क्या कार्य है जिसे आप केन्द्रीय सत्ता कहते हैं और वह कहाँ स्थित है?*

'पुरुष' सचेतन सत्ता है जो 'प्रकृति' की हर क्रिया का समर्थन करता है।

१. "श्रीमाँ के साथ वार्तालाप", उस पुस्तक का पहला सीमित संस्करण था जो बाद में "श्रीमाँ के वचन" (पहली शृंखला) के तहत प्रकाशित हुई।

उसका कोई निश्चित स्थान नहीं है, परन्तु केन्द्रीय सत्ता के रूप में वह सामान्यतः 'आधार' के ऊपर स्थित होता है—वह मानसिक, प्राणिक, शारीरिक और चैत्य सत्ता भी बन जाता है।

*क्या मनुष्य की अन्तरात्मा ही 'पुरुष' है?*

नहीं, चैत्य सत्ता मनुष्य की अन्तरात्मा है।

*भगवान् को पूर्ण समर्पण करने के लिए 'पुरुष' कितना समय लेता है?*

उसका कोई निश्चित समय नहीं है।

*क्या वह 'पुरुष' ही है जो सत्ता में श्रीमाँ की 'शक्ति' और 'कृपा' की क्रिया को सहमति देता है?*

हाँ।

*क्या सभी सत्ताएँ (मानसिक, प्राणिक, शारीरिक और चैत्य) 'पुरुष' के प्रभाव तले होती हैं?*

एक तरह से वह सब पर अध्यक्षता करता है।

*अगर 'पुरुष' श्रीमाँ की 'कृपा' की क्रिया को सहमति न दे तो क्या रूपान्तर के लिए वह दूसरी सत्ताओं को श्रीमाँ की 'कृपा' को ग्रहण करने या उसे अनुभव करने से रोकता है?*

नहीं। बहुधा पुरुष पीछे हट कर अपने स्थान पर दूसरी सत्ताओं को सहमति देने या अनुभव करने के लिए छोड़ देता है।

*जब साधक श्रीमाँ की 'कृपा' को अपने अन्दर उतरते हुए अनुभव करता है तो क्या वह श्रीमाँ की सहमति से होता है?*

सहमति से तुम्हारा क्या मतलब है? श्रीमाँ की 'कृपा' श्रीमाँ की इच्छा से नीचे उतरती है। 'पुरुष' 'कृपा' को स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है।

*–श्रीअरविन्द*

# झरने का पानी

प्यास लगी भगवान् बुद्ध को
कहा शिष्य आनन्द से,
ले आओ पानी, बहते पास के झरने से।
गया आनन्द पानी लेने
देखा, पानी गन्दा हो गया, बैल-गाड़ियों के गुज़रने से।
वापस आकर बोला आनन्द,
पानी गन्दा हो गया, बैल-गाड़ियों के गुज़रने से,
लाता हूँ पानी पीने का, पास की बहती नदी से।
कहा बुद्ध ने आनन्द से, लाओ जल झरने का ही,
गया आनन्द फिर वहाँ,
था पानी अब भी वैसा ही, फिर लौट आया आनन्द।
इस प्रकार गया तीन बार
और लौट आया बिना पानी लिये।
पहुँचा जब चौथी बार झरने के पास
हो गया था साफ़ पानी झरने का,
सड़े-गले पत्ते, कीचड़, बैठ गये थे सब कुछ नीचे।
भर लिया पात्र जल से आनन्द ने
दिया जाकर बुद्ध के हाथों में।
मुस्कुराकर बोले बुद्ध,
आनन्द! हमारे जीवन-जल को भी
विचारों की बैल-गाड़ियाँ निरन्तर करती रहती हैं गन्दा
और भाग जाते हैं हम जीवन से।
भागें नहीं यदि हम
कर लें प्रतीक्षा थोड़ी-सी
मन की झील के शान्त होने तक,
तो हो जायेगा सब कुछ स्वच्छ
उसी झरने की तरह...।

'साहित्य-संहिता' से साभार

*–रामप्रसाद गुप्त*

# सच्ची इबादत

बादशाह के नमाज़ का वक़्त हो गया, हाथ का काम वैसे ही छोड़ कर वे नमाज़ में बैठ गये और देखते-न-देखते ख़ुदा की इबादत में डूब गये। लेकिन यह क्या? कुछ ही पलों में उनका ध्यान टूट गया, प्रार्थना खण्डित हो गयी और उन्होंने देखा कि एक नवयुवती उन्हें ठोकर मार कर बड़ी आतुरता के साथ तीर की तेज़ी से उनके क़रीब से निकल भागी।

बादशाह आगबबूला हो उठे। उनके धीरज के सारे बाँध भरभरा कर टूट गये और क्रोध की नदियाँ चारों तरफ़ बह निकलीं। उनकी अंगारों जैसी आँखों और क्रोध से सुलगते शरीर को देख आस-पास के सभाजन भी काँप-काँप उठे। राजा के अहंकार को चोट पहुँची थी। घायल नाग की भाँति वे फुँफकार उठे—"कौन थी यह दु:साहसी साधारण युवती? इसकी इतनी आस्पर्द्धा!!" और तुरन्त उन्होंने अपने अंगरक्षकों को आदेश दिया—"उस धृष्टा नारी को बन्दी बना कर फ़ौरन हमारे सामने हाज़िर किया जाये।"

आनन-फ़ानन राजाज्ञा का पालन हुआ और देखते-न-देखते बन्दिनी बादशाह के सामने खड़ी थी। आश्चर्य और भयार्त दृष्टि से वह चारों ओर देख रही थी। किसी अनिष्ट की आशंका से लरजते स्वर में, हाथ जोड़े उसने राजा से विनती की—"आपके सैनिक मुझे यहाँ पकड़ कर क्यों ले आये, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा राजन्! आख़िर मुझसे ऐसी कौन-सी भूल हो गयी?"

युवती के वचन सुन कर राजा का पारा सातवें आसमान पर पहुँच गया। सिंह की भाँति दहाड़ उठे—"अरे उद्दण्ड नारी! इतना घोर अपराध करके पूछती है, 'क्या भूल हुई मुझसे?' अन्धों की तरह आचरण कर अपने-आपको निर्दोष ठहराना चाहती है दुष्टे? अभी कठोर से कठोर दण्ड पाकर समझ जायेगी अपनी ग़लती।" और दहकते अंगारों की तरह राजा का आदेश सभा में गूँजता हुआ उस बन्दिनी के कानों में पड़ा—"ले जाओ इसे। बीस कोड़े खाकर सारी अकल ठिकाने आ जायेगी इसकी।"

युवती का हृदय दहल उठा, आँखों में पानी उतर आया। अनुनय-विनय भरे स्वर में एक बार फिर पूछ बैठी—"लेकिन मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध हो गया राजन्, कृपया बतलाइये। अज्ञान में की गयी भूल क्षमा

के योग्य होती है प्रभो!"

नारी के इन वचनों ने राजा के क्रोध में घी का काम किया। क्रोध के आवेश में आकर सिंहासन से उठ खड़े हुए। मुट्ठियाँ भिंच गयीं, हाथ को हवा में लहराते हुए उनका क्रोध ज्वालामुखी की भाँति फूट पड़ा—"रे पापिन्! नमाज़ जैसे पवित्रतम कार्य में तल्लीन था मैं, उस समय तू मुझे पैर से ठुकरा कर पागलों की तरह भागती हुई गुज़र गयी, क्या इस सच्चाई को भी नहीं मानेगी तू अब? मेरे जैसे राजा का इतना घोर अपमान कर इतनी धृष्टता के साथ पूछती है, 'क्या दोष है मेरा?' कोड़े खाकर सब कुछ समझ में आ जायेगा।"

राजा की बातें सुन कर एक क्षण पहले की उस भयभीत नारी में अचानक एक परिवर्तन, रूपान्तर-सा आ गया जिसका अनुभव वहाँ खड़े सभी लोगों ने किया। सभी उसका यह नया रूप देख कर चौंक उठे। उसकी धीर-गम्भीर वाणी गूँज उठी—"निश्चय ही मुझसे घोर अपराध हुआ है राजन्! अपने महाराज को ठोकर मारना!! सचमुच मुझे कठोरतम दण्ड मिलना चाहिये, लेकिन हे प्रजापालक, कोड़े खाने से पहले मेरी आपसे एक विनती है।"

"कैसी विनती? लेकिन यह मत सोचना कि दण्ड से मुक्त कर दी जाओगी।"

युवती हाथ जोड़ कर कहने लगी —"हे दीनबन्धो! उस समय मैं दूर देश से आये अपने पति से मिलने जा रही थी। उनके दर्शन के लिए मैं इतनी आत्मविभोर थी कि मेरी आँखों में केवल उन्हीं की छवि और कान्ति छायी हुई थी जिसके कारण मुझे चारों तरफ़ केवल उन्हीं के दर्शन हो रहे थे। क्षमा कीजिये, सौ बार क्षमा कीजिये हे दीनदयाल! ऐसी अवस्था में आपसे टकराने का मुझे आभास तक न हुआ।"

पल-भर के लिए रुकी वह नारी। उसके साथ-साथ वहाँ उपस्थित अन्य लोग भी निस्तब्ध खड़े रह गये। राजा की बँधी मुट्ठियाँ ढीली पड़ गयीं। युवती ने अपनी बात आगे बढ़ायी—"हे नरेन्द्र! फिर से क्षमा-याचना करती हूँ, लेकिन मेरे हृदय में एक विवाद अब भी शोर मचा रहा है। आपने भला यह कैसे जाना कि कोई आपको ठोकर मार कर चला गया जब कि आप उन सर्वशक्तिमान् परमपिता, परमात्मा की पूजा-प्रार्थना में एकाग्रचित्त होकर

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Registered: PY/47/2018-20 Date of Publication: **1st July 2019** **(Monthly)**
RNI No.18135/70 **Rs. 30**

A school by **The Vatika Group** vatika

# Nature Friendly

"My child is in Grade 4. My son's journey with this school started 5 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

***Dr. Nidhi Gogia***
*Mother of Soham Sharma, Grade 4*

**ADMISSIONS OPEN**
**Academic Year 2018-19**

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

*Junior School* SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

*Senior School* VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 onwards

**Junior School**
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gurugram
+91 124 4938200, +91 9650690222

**Senior School**
Sec 83, Vatika India Next, Gurugram
+91 124 4681600, +91 9821786363